जीवन-ज्योति

सेठ गोविन्ददास

जीवन-ज्योति

सम्पादक

सेठ गोविन्ददास, डी० लिट्

१९८०

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०

रामनगर; नई दिल्ली-११००५५

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०

मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-११००५५

शो रूम : ४/१६ बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२

शाखाएँ :

माई हीरां गेट, जालन्धर-१४४००८

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-२२६००१

२८५/जे, विपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००१२

ब्लेकी हाउस, १०३/५, वालचन्द हीराचन्द्र मार्ग, बम्बई-४००००१

खजांची रोड, पटना-८००००४

सुल्तान बाजार, हैदराबाद-५००००१

१५२, अना सलाए, मद्रास-६००००२

३, गाँधी सागर ईस्ट, नागपुर-४४०००२

के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेस कोर्स रोड, बंगलौर-५६०००६

६१३-७, महात्मा गांधी रोड, एर्नाकुलम, कोचीन-६८२०१८

प्रथम संस्करण : १९६९

द्वितीय संस्करण : १९८०

मूल्य : ५.००

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा प्रकाशित तथा राजेन्द्रा रविन्द्रा प्रिन्टर्स (प्रा०) लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

अंग्रेज कवि पोप ने लिखा है--The proper study of man is man अर्थात् मनुष्य के अध्ययन का सबसे उपयुक्त विषय मनुष्य ही है। जीवनियों में मानव की कृतियों की अपेक्षा मानव के व्यक्तित्व का अध्ययन प्रधान होता है। जहां घटनाओं का विवेचन किया भी जाता है वहां चरित्र-नायकों की सफलताओं एवं विफलताओं के द्वारा पाठक के मन में उनके व्यक्तित्व का प्रभुत्व स्पष्ट करना उद्देश्य होता है। जीवनी साहित्य में जीवित व्यक्तितत्व ही केन्द्र में रहता है घटनाएं तो गौण होती हैं।

जीवनी साहित्य का निर्माण भी एक कला है। यह कला पश्चिम के देशों में बहुत विकसित हो चुकी है। जीवनी साहित्य में न तो इतिहास है और न उपन्यास। यह विधा इन दोनों के मध्य की स्थिति से उत्पन्न होती है। जीवनी साहित्य में "उपन्यास की अपेक्षा घटनात्मक सत्य के प्रति अधिक आग्रह रहता है।" जीवनी साहित्य विधा को स्पष्ट करते हुए बाबू गुलाबराय लिखते हैं :--

"जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन् चित्रण है। वह साहित्य की एक विधा है, उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण हैं। वह एक मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है। जिस प्रकार चित्र-कार अपने विषय का एक ऐसा पक्ष पहचान लेता है जो उसके विभिन्न पक्षों में ओतप्रोत रहता है और जिसमें नायक की सभी कलाएं और छटाएं समन्वित हो जाती हैं उसी प्रकार जीवनीकार अपने नायक के आपे की कुंजी समझकर उसके आलोक में सभी घटनाओं का चित्रण करता है।"

जीवनियों का यह संकलन जिन छात्रों को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया गया है उनके कोमल मन पर महापुरुषों के शौर्य, उनकी त्याग-तपस्या का गहरा प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार के व्यक्ति को छात्र आदर्श बना कर अध्ययन करता है उसी प्रकार का उसका जीवन अनजाने ही निर्मित होता जाता है। यदि उस अवस्था में किसी ने राणा प्रताप को अपना आदर्श

बनाया तो वह निश्चय ही शूरवीर, देशप्रेमी एवं निर्भीक होगा। यदि कबीर को आदर्श मानकर चलता है तो वह साम्प्रदायिक ऐक्य की स्थापना में सहायक लोकप्रिय धार्मिक नेता बनेगा। जिस छात्र की जैसी जन्मजात रुचि होती है वह वैसा ही आदर्श अपने सामने रखता है।

विद्यार्थियों की विभिन्न रुचियों को ध्यान में रखकर महापुरुषों के वर्ग बना दिए गए हैं। एक वर्ग नानक और कबीर जैसे महात्माओं का रखा गया है जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा समाज में एकता और सहिष्णुता का भाव विकसित किया। दूसरा वर्ग उन शूरवीरों का है जिन्होंने देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपने प्राण निछावर कर दिए। तीसरा वर्ग उन राष्ट्रीय कवियों का है, जिनकी वाणी राष्ट्रीय एकता के निर्माण में सदा सहायक होती रहेगी। चौथा वर्ग उन नेताओं का है जिन्होंने गांधी-युग में अपना सर्वस्व त्याग कर बन्दीगृह में नाना प्रकार के कष्ट सहन किए।

पांचवां वर्ग उन भारतीय वैज्ञानिकों का है जिन्होंने अपने बुद्धि-वैभव से विज्ञान-जगत् को समृद्ध बनाया। हमारे कितने ही छात्र गणित और विज्ञान में रुचि रखते हैं। उनके सामने यदि जगदीशचन्द्र बसु और चन्द्रशेखर वेंकटरमन का आदर्श रखा जाये तो वे अवश्य ही विज्ञान के नए अनुसन्धान की तैयारी जीवन भर करते रहेंगे और नए अनुसन्धानों से विज्ञान को समृद्ध बनाकर देश की प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे।

जिन मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर ये जीवनियां संकलित की गई हैं उनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है :—

(१) हमारे देश के दो बड़े शत्रु हैं—संकीर्ण प्रान्तीयता और जातिगत वैमनस्य। इन दोनों रोगों के उन्मूलन का एक ही उपाय है कि कोमल स्वभाव वाले छात्रों के हृदयों में सम्पूर्ण देश की एकता और भारतीयता की भावना भर दी जाए। प्रत्येक महापुरुष के जीवन में इन दोनों भावनाओं का प्राधान्य दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

(२) हमारे देश में धार्मिक सहिष्णुता का भाव धीरे-धीरे मिटता जा रहा है। साम्प्रदायिक भेदभाव को मिटाने वाले महापुरुषों की महत्ता पर बल देना परम आवश्यक है। अतएव धार्मिक सहिष्णुता की आवश्यकता

को दृष्टि में रखकर यह संकलन प्रस्तुत किया गया है ।

(३) प्राय: जीवनियों के लेखक तथ्यों के संकलन के समय साहित्यिक सरसता को भूल जाते हैं । इस कारण जीवनियां नीरस हो जाती हैं और छात्र स्वयं उन्हें पढ़ना नहीं चाहते । इस संकलन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि तथ्यों एवं घटनाओं का आकलन उन्हें रससिक्त बना कर किया गया है । प्रत्येक जीवनी को इस रूप में रसाप्लुत कर दिया गया है मानो पाठक कोई सरस कहानी पढ़ रहा हो ।

(४) छात्रों का हृदय प्राय: भावुक हुआ करता है । उनके भावुक हृदय में जीवन का एक उद्देश्य निश्चित कर देने से वे अनेक बुराइयों से स्वत: बच जाते हैं । इन जीवनियों में चरित्र-नायकों के जीवन की उन घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है जो छात्रों की आयु में घटती रहती हैं । अत: छात्रों को इन जीवनियों में अपनी आयु के भावुक हृदय में उठने वाले संकल्प विकल्पों का आभास मिलेगा जिससे उनकी रुचि परिष्कृत होगी और सत्य संकल्प में दृढ़ता आयेगी ।

(५) भारतीय गौरव की रक्षा में तन-मन-धन अर्पण करने वाले नेताओं की त्याग-तपस्या और दूरदर्शिता का विशद विवरण प्रस्तुत करने से छात्रों के कोमल मन में सत्य और बलिदान की भावना जाग्रत होगी । इस उद्देश्य को सामने रखकर गांधी-युग के राष्ट्रवादी नेताओं के जीवन की मार्मिक कहानियां इसमें संग्रहीत की गई हैं ।

(६) आधुनिक युग में कोई भी व्यक्ति भौतिक मूल्यों की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता । इस युग में आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ भौतिक मूल्यों का महत्त्व भी समझना होता है । इस संकलन में इन दोनों—आध्यात्मिक महत्त्व एवं भौतिक मूल्यों—का समन्वय किया गया है । गांधी-युग की यह भी विशेषता रही है कि इसमें राष्ट्रीयता को आध्यात्मिकता के साथ संलग्न कर दिया गया है । इस संकलन में इन दोनों मूल्यों को आद्योपान्त ध्यान में रखा गया है ।

हमारा विश्वास है कि इन जीवनियों से छात्रों को जीवन में सन्तुलन स्थापित करने की प्रेरणा मिलेगी । इस संकलन की भाषा को इतना सरल

और सरस बनाने का प्रयत्न किया गया है जितना छात्रों के लिए नितान्त आवश्यक है। आधुनिक छात्रों की रुचि एवं आवश्यकता को ध्यान में रख कर इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। आशा है कि इस लघुकाय जीवनी ग्रन्थ की उपादेयता अवश्य प्रमाणित होगी।

--सम्पादक

विषय सूची

१

गुरु नानक देव

डा० कैलाशपति

इस देश की एक विशेषता रही है कि समय-समय पर युग की आवश्यकता के अनुसार महापुरुष जन्म लेते रहे हैं। भारत में मुस्लिम राज्य स्थापित होने पर दोनों जातियों में ऐक्य की आवश्यकता प्रतीत हुई। ऐसे समय में जातिगत विद्वेष को मिटाने के उद्देश्य से मानो स्वयं भगवान् ने अवतार धारण करके पृथ्वी पर जन्म लिया हो।

गुरु नानक का अवतरण सन् १४६९ ई० की अक्षय-तृतीया को पंजाब के शेखुपुरा जिले के तलवंडी (ननकाना साहब) नामक स्थान पर हुआ। पुत्रजन्म के समाचार से पिता कालूचन्द खत्री को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। कुल-प्रथा के अनुसार नवजात शिशु की जन्म-कुंडली बनी। ज्योतिषी ग्रहफल देखकर चकित रह गया। उसने भविष्यवाणी की कि यह बालक कालान्तर में बड़ा धर्मात्मा, महात्मा एवं देश-जाति का श्रेष्ठ नेता बनेगा।

शैशव से ही गुरु नानक के महापुरुष होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। साल भर की अवस्था में ही उनके सारे दांत निकल आये थे। उनकी तोतली बोली में ही भजन की धुन जैसी होती थी। वे बैठते समय उपासना की मुद्रा में पैर मोड़कर बैठते। वे जब पांच वर्ष के बालक हुए तब अपने साथी बच्चों को ईश्वर सम्बन्धी बातें बताया करते थे। ७ वर्ष की अवस्था में इन्हें पाठशाला में भेजा गया। कहा जाता है कि पण्डितजी ने जब पहाड़ा लिखकर इन्हें रटने को कहा तो गुरु नानक ने कहा––संसार में जो व्यक्ति इस हिसाब किताब के प्रपंच में पड़ा वह कभी भी सुखी नहीं रहा। मैं तो ईश्वर-भजन करने आया हूं। मेरी समझ में आप भी इन प्रपंचों को छोड़कर ईश्वर की आराधना करें। दूसरी घटना उनके सम्बन्ध में यह है कि गुरुजी ने जब

ओंकार शब्द लिखकर उसका अभ्यास करने के लिए कहा तब नानक ने इस शब्द का अर्थ पूछा। इस पर गुरु चकित रह कर बालक के मुख की गम्भीरता को देखने लगे। उन्हें प्रतीत हुआ कि यह साधारण बालक नहीं है। उन्होंने कहा—यदि तुम स्वयं ओंकार शब्द के बारे में जानते हो तो कहो। तब नैसर्गिक ज्ञानी और महात्मा नानक ने ओंकार शब्द की ऐसी व्याख्या की कि गुरु भी आश्चर्यचकित रह गये। इस प्रकार सिद्ध होता है कि नानक जन्मजात महात्मा, सन्त और महापुरुष थे।

सांसारिक प्रपंचों से इन्हें उदास देखकर उनके पिता को बड़ी चिन्ता हुई। वे छोटे-छोटे कार्यों के बहाने उन्हें सांसारिकता की ओर आकृष्ट करना चाहते थे। एक दिन पिता ने उन्हें कुछ द्रव्य देकर नमक खरीदने के लिए भेजा। नमक के लिए अपने गांव से वे चिड़काना ग्राम पहुंच गये। वहां उन्होंने अनेक यात्रियों को भूखी अवस्था में देखा। बस, उस द्रव्य को उन्होंने याचकों की भोजन-सामग्री के लिए व्यय कर दिया और स्वयं खाली हाथ घर लौट आये। यह हाल देखकर पिता बहुत क्रुद्ध हुए। किन्तु नानक ने इन बातों की चिन्ता नहीं की। पिता इन बातों को देख कर जितना ही क्रुद्ध होते थे उतना ही दुःखी भी होते थे। वे देखते कि नानक कई-कई दिन तक जन-कोलाहल से दूर जाकर एकान्त में चिन्तन करता है। आखिर जब कोई उपाय नहीं सूझा तो पिता ने नानक को उनके बहनोई के निकट सुल्तानपुर भेज दिया। वहां उनके बहनोई ने नवाब दौलत खां के यहां एक मोदीखाने में नानक को नौकर रखवा दिया। वहीं मूलचन्द नामक एक व्यक्ति था जिसने अपनी लड़की सुलक्षणी से उनका विवाह करवा दिया। नानक के दो पुत्र हुए। इससे उनके पिता निश्चिन्त हो गये कि अब नानक राह पर आ गये हैं

गुरु नानक संसार में रहते हुए भी संसार में उसी प्रकार आसक्त नहीं थे जैसे पद्म जल में रहते हुए भी जल से प्रभावित नहीं होता। वे संसार-धर्म पालन करते हुए संसार से उदासीन थे। अवसर पाते ही वे धर्मोपदेश से अपने आस-पास के लोगों को ईश्वर-आराधना करने को कहते थे। गुरु नानक को यह विश्वास था कि सब धर्मों का मूल एक ही है। इसी कारण

नानक हिन्दू-मुसलमान सब धर्मों का समान भाव से आदर करते थे और सभी जाति के लोगों को धर्म का उपदेश देते थे। नानक के इन उपदेशों को सुनकर मुसलमान काजियों ने नवाब दौलत अली खां से शिकायत की कि अगर गुरु नानक को ऐसा ही विश्वास है, तो वे नमाज क्यों नहीं पढ़ते ? महात्मा नानक को इसमें आपत्ति ही क्या हो सकती थी——वे तो सच्चे हृदय से यह विश्वास करते थे कि ईश्वर एक है। अतः बिना किसी दुविधा के वे मस्जिद में गए और घुटने टेक कर बड़ी श्रद्धा से नमाज के कार्यक्रम में भाग लिया। काजियों को महात्मा के इस सरल एवं अहंकारहीन व्यवहार से लज्जित होना पड़ा।

प्रायः तीस वर्ष की अवस्था में नानक गृहस्थी से एकदम उदासीन हो गये। वे देश-विदेश भ्रमण करने के लिए संन्यासी बन कर निकल पड़े। अपनी पत्नी के कातर विलाप तथा बच्चों के करुण रुदन की उन्होंने उपेक्षा कर दी। गौतम बुद्ध, श्री चैतन्य, सभी ने अपनी गृहस्थी इसी प्रकार छोड़ दी थी। गुरु नानक जैसे महात्मा घर के बन्धन में क्योंकर बंध सकते थे ? सम्पूर्ण विश्व को ही उन्होंने अपना घर बना लिया। उन्होंने पंजाब से भ्रमण आरम्भ किया। वहां के कुछ स्थानों पर उपदेश देते हुए वे आगे बढ़े। अवध, बिहार, बंगाल होते हुए कामरूप में कामाक्षा देवी के मन्दिर पहुंचे। वहां से वे उड़ीसा में जगन्नाथजी गये और लौटते समय ताल भोपाल होकर सुलतानपुर आये। सुलतानपुर से वे अपने घर आकर फकीर की तरह रहने लगे। इसके कुछ दिनों बाद नानक फिर से भ्रमण करने निकल पड़े। यह यात्रा सुदूर दक्षिण की ओर की थी। तीसरी बार जो यात्रा उन्होंने की वह करतारपुर की पहाड़ी में हुई थी। उनकी चौथी यात्रा तो वास्तव में एक हिन्दू के लिए बड़ी विचित्र बात थी। गुरु नानक की चौथी यात्रा मक्का की ओर थी। मक्का मुसलमानों का तीर्थ-स्थान था। इस यात्रा से यह प्रमाणित हो जाता है कि गुरु नानक हृदय से यह विश्वास करते थे कि ईश्वर एक है; मन्दिर और मस्जिद दोनों ही स्थानों में वही एक ईश्वर वास करता है।

मक्का-यात्रा के विषय में यह प्रचलित है कि गुरु नानक अब बहुत वृद्ध हो चले थे और मक्का जाते-जाते थक गये थे। वृद्ध नानक मार्ग-श्रम के

ारण शिथिल होकर एक वृक्ष के नीचे सो गये। उधर से एक मुसलमान काजी जा रहा था। उसने देखा एक पथिक मस्जिद की ओर पैर करके सो रहा है। उसने वृद्ध नानक को जगा दिया और उन पर अपना क्रोध भी प्रकट किया। नानकजी ने कहा मैं तो जिधर पैर करता हूं उधर ही खुदा की दरगाह पाता हूं। ईश्वर तो सर्वव्यापी है। गुरु नानक ने जब पैर हटाकर दूसरी ओर किये, तो काजी ने देखा कि मस्जिद उधर घूम गयी है। गुरु नानक ने जिधर-जिधर पैर घुमाये, मस्जिद उधर ही घूमती गयी। यह देख काजी बड़ा हैरान हुआ। इस कहानी में कुछ लोग अतिशयोक्ति का दोष पाते हैं। परन्तु सत्य यही है कि नानक के मन में ईश्वर के प्रति अखण्ड विश्वास था। मक्का मदीना से होकर गुरु नानक बगदाद पहुंचे। इन सब जगह के लोगों ने उनका बड़ा भव्य स्वागत किया। उन्होंने मुसलमानों को भी धर्म का उपदेश दिया। बगदाद में एक काजी ने उन्हें एक बहुमूल्य चोला उपहार में प्रदान किया। नानक उसे अपने साथ ले आये थे। बगदाद से नानक रूस तथा ईरान भी गये। यहां उनके वृद्ध सहचर मरदाना की मृत्यु हो गयी। इसके बाद नानक और बाहर नहीं रहे, वे भारत लौट आये और करतारपुर में रहने लगे। जीवन का शेष भाग आपने करतारपुर में ही व्यतीत किया।

देश-विदेश के भ्रमण से उनके स्वभाव में मानवता के प्रति सहज स्नेह उत्पन्न हो गया था। वे मानव-मात्र को एक मानते थे। वे जाति-पाति में विश्वास नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने एक ऐसे समुदाय की स्थापना की जो संकीर्णताओं से दूर हो। यह एकेश्वरवादी धर्म था। इसे अब हम सिक्ख धर्म कहते हैं। नानक ने अपने मत का प्रवर्त्तन निरीह भक्ति और परमार्थ-चिन्तन के रूप में ही किया था। वे एकेश्वरवाद में पूर्ण विश्वास रखते थे जो सन्तों के निर्गुण ब्रह्म के सिद्धान्त के समान है। परन्तु, सन्तों जैसा उनमें अक्खड़पन नहीं था, उतनी तीव्रता नहीं थी। खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति को उन्होंने अपने उपदेशों में स्थान नहीं दिया। यह उनकी विशिष्टता थी।

गुरु नानक द्वारा प्रवर्तित इस धर्म में आगे चलकर नौ अन्य गुरु भी हुए। इनमें गुरु गोविन्दसिंह भी नानक जैसे ही प्रतापी थे। इन दसों

गुरुओं का आदेश गुरुग्रन्थसाहब में संग्रहीत है। यह ग्रन्थ सिक्खों का धर्म-ग्रन्थ है। आगे चलकर इस सिक्ख धर्म का स्वरूप बदलता गया। इन निरीह धर्मावलम्बियों को अपने धर्म की रक्षा के हेतु, जाति की रक्षा के हेतु, वीर-वेष धारण करना पड़ा और आज यही वेष उनका गौरव है।

गुरु नानक की मृत्यु सन् १५३८ ई० में हुई थी। वे हमारे अत्यन्त प्रभावशाली सिक्ख सम्प्रदाय के आदिगुरु थे, उसके मूल प्रवर्त्तक थे। वे हमारे मध्ययुग के क्रान्तिकारी समाज-सुधारक थे। वे हिन्दुओं के गुरु तथा मुसलमानों के पीर थे। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों उनके प्रति युग-युग तक ऋणी रहेंगे। भारतीय इतिहास में नानक देव संस्कृति नायक के रूप में इसीलिए विद्यमान हैं कि अपनी प्रकृति और प्रतिभा से उन्होंने एक नवीन धर्म-सम्प्रदाय का आविर्भाव किया। यह एक ऐसा सम्प्रदाय था, जिसकी मान्यताओं को आज शेष हिन्दू जगत् अपना रहा है—उदाहरण के लिए जाति-पाति का विरोध, सभी धर्मों की समानता, आदि। इस सम्प्रदाय की जड़ें बड़ी गहरी हैं, इसलिए इसका अस्तित्व स्थायी रहेगा।

गुरु नानक ने देश को जातीय एकता का सुन्दर पाठ पढ़ाया। उन्होंने अपने देश को, बाहरी आडम्बर छोड़कर, हृदय से मानव जाति से प्रेम करना सिखाया। बाहर-बाहर के अन्तर का तो कहना ही क्या बाहर-भीतर का अन्तर भी मिटा देना उनका लक्ष्य था। वे कहते थे कि भीतर-बाहर सर्वत्र भगवान् विराजमान है। अपने आपको पहचानो, जीवन सफल हो जाएगा :—

बाहर भीतर एकै जानो यह गुरुज्ञान बताई।
जब नानक बिन आपा चीन्हे, मिटे न मन की काई॥

गुरु नानक की ही सन्त-परम्परा में आगे चल कर कबीर, दादू, सुन्दर दास आदि महात्मा हुए जिन्होंने जातीय एकता का पाठ देश को सिखाया। कबीरदास तो ललकार कर कहते हैं—

हिन्दू तुरक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहेउ खुदाई॥

२

कबीरदास

सम्पादक

गुरु नानक के समान जिन साधु-सन्तों ने देश की एकता को स्थायी बनाने का प्रयत्न किया उनमें कबीरदास का प्रमुख स्थान है। कबीरदास अपने को जुलाहा कहते थे। इससे प्रतीत होता है कि किसी जुलाहा जाति में इनका जन्म संवत् १४५६ में काशी में हुआ था। डा० हजारी प्रसाद लिखते हैं--"कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे बराबर अपने को 'ना-हिन्दू ना-मुसलमान' कहते रहे।--कभी-कभी यह संदेह होता है कि वे आध्यात्मिक सत्य के अतिरिक्त एक सामाजिक तथ्य की ओर भी इशारा कर रहे हैं। उन दिनों वयनजीवी नाथ मतावलम्बी गृहस्थ योगियों की जाति सचमुच ही 'ना-हिन्दू ना-मुसलमान' थी।"

जनश्रुति है कि एक शिशु काशी में लहरतारा तालाब के किनारे पड़ा था जहां से नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति जा रहे थे। इस दम्पति ने शिशु का पुत्रवत् पालन-पोषण किया। कबीरदास बचपन से ही साधु-महात्माओं की संगति में बैठने को लालायित रहते थे। उनके इस संस्कार का परिणाम यह हुआ कि अनेक साधु महात्माओं से इनका परिचय हो गया। किसी पाठशाला या मकतब में इन्हें पढ़ने का अवसर नहीं मिला। पर सत्संगति से इन्होंने उच्च कोटि का ज्ञान अर्जित कर लिया। समय आने पर लोई नामक स्त्री से इनका विवाह कर दिया गया। कालान्तर में कमाल नामक एक पुत्र भी इन्हें उत्पन्न हुआ। कबीरदास के समय में काशी के प्रसिद्ध महात्मा रामानन्द जी थे जिनके निकट सम्पर्क मे आने से महात्मा कबीरदास पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

कबीर का मत—कबीरदास का पालन पोषण जिस वंश में हुआ था उसमें योगमत का बड़ा प्रचार था । योगमत का सम्बन्ध किसी एक जाति से नहीं रहता । उसमें हिन्दू-मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं होता । कबीरदास जन्मजात कवि थे । जीवन का स्तर ऊंचा उठाने के लिए उन्होंने कितने ही दोहों और पदों की रचना की है । वे पदों में कभी अवधू या अवधूत को पुकारते हैं, कभी पांडे या मुल्ला कह कर सम्बोधन करते हैं । डा० हजारी प्रसाद कहते हैं—"कबीरदास के पदों में जितने सम्बोधन हैं उन सबका एक-न-एक खास प्रयोजन है । जब उन्होंने अवधू या अवधूत को पुकारा है तो अवधूत की भाषा में आलोचना की है । जब वे पंडित या पांडे को सम्बोधित करते हैं तो वहां भी उनका उद्देश्य पंडित की ही भाषा में पंडित की ही युक्तियों के बल पर उसके मत का निराकरण करना होता है । इसी तरह मुल्ला, काजी आदि सम्बोधनों को भी समझना चाहिए । जब वे अपने आपको या सन्तों को सम्बोधित करके बोलते हैं तब वे अपना मत प्रकट करते जान पड़ते हैं । वे अपने मत के मानने वाले को ही 'सन्त' या 'साधु' कहते हैं । साधारणत: वे 'भाई' सम्बोधन के द्वारा साधारण जनता से बात करते हैं और जब कभी वे 'जोगियों' को पुकार उठते हैं तो स्पष्ट ही जान पड़ता है कि इस भले आदमी के सम्बन्ध में उनकी धारणा कुछ बहुत अच्छी नहीं थी ।"

इससे सिद्ध होता है कि कबीरदास की दृष्टि पंडित-मौलवी, धूत-अवधूत, पठित-अपठित, हिन्दू-मुसलमान, योगी-यती, गृहस्थ-वैरागी सब की ओर थी । सबके लिए उन्होंने एक आचार-संहिता तैयार की, जिसमें सदाचार, सत्य-पालन, नाम-जपन पर बहुत बल दिया गया । इस प्रकार सारे समाज में एकता स्थापित करने का जो प्रयास कबीरदास ने किया, वह आज तक स्मरणीय बना है ।

कबीरदास अपने मस्तिष्क का द्वार सदा खुला रखते थे । सत्य की प्राप्ति के लिए, सदा प्रयत्न करते रहना उनका लक्ष्य था । डा० हजारी प्रसाद लिखते हैं—

"अच्छा हो या बुरा, खरा हो या खोटा, जिससे एक बार चिपट गये

उससे जिन्दगी भर चिपटे रहो, यह सिद्धान्त उन्हें मान्य नहीं था। वे सत्य के जिज्ञासु थे और कोई मोह-ममता उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती थी। वे सिर से पैर तक मस्तमौला थे। जो प्रेम का मतवाला है वह दुनिया के माप-जोख से अपनी सफलता का हिसाब नहीं करता। कबीर जैसे फक्कड़ को दुनिया की होशियारी से क्या वास्ता।"

कबीर का व्यक्तित्व—कबीर की उदारता की अनेक कहानियां प्रचलित हैं। दीन दुखी को देखकर उनका दिल पसीज जाता। कहा जाता है कि एक बार पिताजी ने इन्हें कपड़ा बेच आने को भेजा। मार्ग में कुछ सन्त सर्दी से ठिठुर रहे थे। कबीरदास ने सारा कपड़ा उन सन्तों को बांट दिया और खाली हाथ घर लौट आए। जैसा उनका व्यवहार सरल था वैसा ही उनका स्वभाव सहज था। "सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर; जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय। वे जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे, इसीलिए उनकी उक्तियां बेधने वाली और व्यंग्य चोट करने वाले होते थे।"

अपनी सादगी और ईमानदारी से कबीरदास सबके प्रिय बने। किसी में भेदभाव न रखने से उनका सर्वत्र सम्मान हुआ। ब्रह्म का चिन्तन करते करते वह ब्रह्मस्वरूप हो गए। उन्होंने अपने उपदेशों से विभिन्न जातियों और धर्मों में एकता स्थापित की। जीवन भर परोपकार किया। पाखंडियों से उन्हें चिढ़ थी, साधुओं से उन्हें प्रीति थी। आडम्बर करने वालों को वह फटकारते थे, सत्य पालन करने वालों को दुलारते थे। जो कुछ कमाया समाज को अर्पित किया। उन्होंने धार्मिकता को एक नया मोड़ दिया। अन्धविश्वासों को भोली जनता के दिलों से उखाड़ फेंका। मृत्यु काल निकट देख कर बोले—

"जो कबिरा काशी मरै तो रामहिं कौन निहोरा"

संवत् १५७५ में अन्तिम समय काशी से मगहर चले गए। मृत्यु के उपरान्त दो भिन्न सम्प्रदायों में अन्त्येष्टि क्रिया के लिए विवाद उठ खड़ा हुआ

किन्तु शव वस्त्र हटा कर देखा गया तो फूल के सिवाय कुछ और नहीं था। हिन्दू और मुसलमानों ने फूल लेकर अपने-अपने विश्वासों के अनुसार अन्त्येष्टि क्रिया की :

कबीर ने समाज को आजीवन प्रेम का पाठ पढ़ाया। उन्होंने उस काल की सीधी सादी जनता को प्रेम की सीधी सीख ही दी। उनके मत से शुद्ध प्रेम सबसे बड़ा है। "वेद नहीं, शास्त्र नहीं, कुरान नहीं, जप नहीं, माला नहीं, तसबीह नहीं, मन्दिर नहीं, मस्जिद नहीं, अवतार नहीं, नबी नहीं, पीर नहीं, पैगम्बर नहीं। यह प्रेम समस्त बाह्याचारों की पहुंच के बहुत ऊपर है। जो कुछ भी इसके रास्ते में खड़ा होता है वह हेय है।"

३

वीरवर दुर्गादास राठौर

महावीर प्रसाद द्विवेदी

राजपूताने के वीरों की जीवन-कहानियां बड़े ही गौरव, वीरत्व और स्वार्थ-त्याग से भरी हुई हैं। इन वीरों की शूरता और उदारता ही के कारण राजपूताने का नाम चिरविश्रुत है। आज एक ऐसे ही वीर का संक्षिप्त चरित हम यहां सुनाते हैं।

पश्चिमी राजपूताने में मारवाड़ की अनुर्वरा भूमि पर शासन करने वाले राठौर वंश का बसाया हुआ जोधपुर एक प्रशस्त नगर है। जोधपुर ही इस वंश की राजधानी है। जोधपुर का राज्य मारवाड़ की प्रायः सारी भूमि पर है। मारवाड़ के इधर-उधर भी जोधपुर के ही राठौर वंश के राजघराने वाले शासन करते हैं।

वीरवर दुर्गादास इसी राठौर वंश के करणोत नामक प्रसिद्ध कुल में पैदा हुए थे। इनके बाप आशकरण जोधपुर राज्य के किसी महकमे में कर्मचारी थे। बचपन से ही दुर्गादास बहुत बुद्धिमान और वीरताप्रिय थे। थोड़ी ही उम्र में इन्होंने जोधपुर राज्य का एक बड़ा भारी काम किया। राज्य के कुछ लोगों ने एक दल बना कर वहां की प्रजा से, राजाज्ञा का बहाना करके, भूमि-कर वसूल करना शुरू किया था। इनके दमन करने की आज्ञा दुर्गादास के पिता को मिली। पिता ने अपने अल्पवयस्क किन्तु सुयोग्य पुत्र को इसका भार सौंपा। पुत्र ने वह काम कर दिखाया जिसकी उससे कभी किसी को भी आशा न थी। उसने उन विद्रोहियों का अच्छी तरह दमन किया।

आगे चल कर दुर्गादास ने जो-जो काम किये वे राजपूताने के ही नहीं, किन्तु समस्त भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने के लायक हैं।

मारवाड़ में उनके विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है—"माता एहा पूत जन जेहा दुर्गादास।" अर्थात माता हो तो ऐसा पुत्र उत्पन्न करे जैसा दुर्गादास।

शाहजहां को सिंहासन से उतार कर औरंगजेब बादशाह हुआ। दारा और शुजा के सहायक बनकर जोधपुर के महाराज जगवन्तसिंह ने औरंगजेब के सम्राट् होने में बड़ी बाधा पहुंचाई थी। बादशाह होते ही औरंगजेब ने उनसे बदला लेना चाहा। उसने जोधपुर का राज्य हस्तगत कर लेना चाहा। इसका कारण एक तो जसवन्तसिंह से उनकी पुरानी दुश्मनी थी और दूसरा यह कि मारवाड़ की भूमि फारस की खाड़ी के समीप थी, और देहली से वहां जाने के मार्ग पर पड़ती थी। मारवाड़ की सारी भूमि के हस्तगत कर लेने से औरंगजेब ने और भी कई फायदे सोचे थे।

अपने कार्य की सिद्धि के लिए औरंगजेब ने बहादुर राजपूतों की एकदम प्रतिकूलता करना उचित न समझा और लड़ाई-झगड़े की अपेक्षा भी उनसे मेल रखना ही ठीक समझा, इसलिए, महाराज जसवन्तसिंह को उसने अपनी ओर मिला लिया। उन्हें उसने दक्षिण की सूबेदारी दे दी। दक्षिण में मरहठे बागी हो रहे थे। वे मुसलमानों के शासन की जड़ काट देना चाहते थे।

जसवन्तसिंह दक्षिण के सूबेदार होकर वहां का शासन करने लगे। कुछ दिनों बाद औरंगजेब को यह शंका हुई कि वे वहां के मरहठों से मिल गये हैं। इसलिए उसने अफगानों का उपद्रव शान्त करने के लिए उन्हें काबुल भेज दिया। काबुल के जीतने पर वे वहीं के सूबेदार बना दिये गये। पेशावर में रहकर वे वहां का शासन करने लगे।

काबुल के युद्ध में अन्य सरदारों के साथ जसवन्तसिंह के दो लड़के भी मारे गये थे। जसवन्तसिंह की अनुपस्थिति में जोधपुर राज्य का संचालन-सूत्र उनके लड़के पृथ्वीसिंह के हाथों में था। उनको बादशाह ने षड्यन्त्र रचाकर मरवा डाला।

महाराज जसवन्तसिंह अब बुड्ढे हो चुके थे। पेशावर में ही वे सख्त बीमार पड़े, उनके बचने की भी कोई आशा न रही और अन्त में दो-चार दिन बीमार रहकर वे परलोक को सिधार गये।

महाराज जसवन्तसिंह के मरने पर उनकी एक रानी तो वहीं सती हो गई। दूसरी गर्भवती होने के कारण सती न होने पाई।

जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर औरंगजेब बहुत खुश हुआ। उसने देखा कि जोधपुर का हकदार अब कोई नहीं रहा। इस कारण वहां का बन्दोबस्त करने के लिए उसने एक कर्मचारी भेज दिया। अस्तु, यों जोधपुर में अब मुसलमानों का झण्डा फहराने लगा।

पेशावर में जसवन्तसिंह के साथ वीर दुर्गादास भी थे। जसवन्तसिंह के मरने पर वे और अन्य सरदार राजधानी की ओर चल पड़े। औरंगजेब उन सबको रानी समेत दिल्ली में ही रखना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि जोधपुर के स्वतन्त्र शासन में अब उसे किसी प्रकार की बाधा न पहुंचे।

राजपूत सरदार दुर्गादास का मुंह देखते थे। औरंगजेब के इरादे का हाल मालूम होते ही सबने मिलकर दुर्गादास से सलाह की। सलाह में यह निश्चय हुआ कि रानी के सन्तान होने तक रास्ते में ही कहीं ठहरे रहना चाहिए। साथ ही बादशाह को सूचित कर देना चाहिए कि हम लोग धीरे-धीरे आ रहे हैं। बस उन्होंने यही किया।

थोड़े ही दिनों के बाद रानी के गर्भ से एक कुमार पैदा हुआ। राजपूत सरदारों को इससे बड़ी खुशी हुई। बच्चे का नाम रक्खा अजीतसिंह। कुछ दिन मार्ग में और ठहर कर ये लोग दिल्ली को रवाना हुए और वहां पहुंच गये।

बादशाह अजीतसिंह को भी जीवित नहीं देखना चाहता था। उसके दिल में जोधपुर का राठौर वंश कांटे की तरह चुभ रहा था। जब दुर्गादास आदि दिल्ली पहुंचे तब बादशाह ने ऊपरी मन से उनका खूब आदर-सत्कार किया पर अन्दर से वह यह चाहता था कि राजकुमार को लेकर राजपूत सरदार जोधपुर न जाएं। उसे विश्वास था कि ये लोग वहां जाकर जरूर उत्पात मचायेंगे।

औरंगजेब का यह आन्तरिक अभिप्राय राजपूत सरदारों को मालूम हो गया और वे इस आपत्ति से छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगे। इसी बीच एक दिन औरंगजेब ने दुर्गादास से कहा कि अजीतसिंह को तुम

मुझे सौंप दो। मैं ही उसकी शिक्षा आदि का सब प्रबन्ध करूंगा और बड़े होने पर उसे जोधपुर की गद्दी पर बिठाऊंगा। दुर्गादास औरंगजेब की सारी चालाकियों से वाकिफ़ थे। अतएव उन्होंने वैसा करने से साफ इनकार कर दिया। इस पर औरंगजेब को क्रोध आ गया। उसने अपने एक अफसर को हुक्म दिया कि अजीतसिंह को ज़बरदस्ती पकड़ लाओ। परन्तु दुर्गादास दो और सरदारों के साथ अजीतसिंह को लेकर दिल्ली से रातोंरात बाहर निकल गये। शेष राजपूत बादशाही फौज से लड़कर वहीं दिल्ली में कट गए।

दुर्गादास के साथ रानी और अजीतसिंह पहले ही दिल्ली से बाहर हो गये थे। रानी ने उदयपुर के महाराणा राजसिंह की शरण ली। महाराणा ने रानी को प्रसन्नतापूर्वक आश्रय दिया। वे बड़े ही वीर पुरुष थे। फौज लेकर वे दुर्गादास के साथ स्वयं कई बार बादशाही सेना से लड़े भी थे।

महाराणा और रानी ने राजकुमार अजीतसिंह दुर्गादास को सौंप दिया। इसके कई कारण थे। पहले तो दुर्गादास की जन्मभूमि कल्याणगढ़ थी, जो अरावली पर्वत के बीच में ऐसे स्थान पर थी, जहां किसी बाहरी शत्रु की पहुंच न हो सकती थी। दूसरे, राजकुमार को राजसिंह खुल्लम-खुल्ला अपने पास न रखना चाहते थे। दुर्गादास ने अजीतसिंह को खुशी से अपनी रक्षा में ले लिया और उन्हें शस्त्र चलाने में भी निपुण कर दिया।

राजपूतों की बहुत बड़ी सेना तैयार की गई। वीरवर दुर्गादास ने मुसलमानों के विरुद्ध तलवार उठाई। महाराणा राजसिंह ने भी उनकी सहायता के लिए अपनी फौज भेजी। स्थान-स्थान पर मुसलमानी सेना के साथ राजपूतों की कई घमासान लड़ाइयां होती रहीं, जिनमें कभी तो राजपूतों की जीत होती थी और कभी मुसलमानों की। मारवाड़ के नौ किलों में से सभी किले बादशाह के अधिकार में थे। दुर्गादास ने बादशाही फौज को हराकर एक-एक करके क्रमशः आठ किले छीन लिये।

इन किलों को अपने अधिकार में करते समय दुर्गादास को अनेक आपत्तियां उठानी पड़ीं। इनके सहोदर भाई, प्यारे पुत्र और परम मित्र, इन युद्धों में काम आते रहे। इतने पर भी उस वीर-रत्न ने हिम्मत न हारी और अन्त में उसने जोधपुर का किला ले ही लिया।

दुर्गादास ने औरंगजेब के शाहज़ादे अकबर को अपनी ओर मिला लिया था। अकबर ही नहीं, औरंगजेब के दो-एक सेनापति भी दुर्गादास से मिल गये।

यह दशा देख कर औरंगजेब दुर्गादास पर स्वयं ही चढ़ आया। दुर्गादास ने अरावली पहाड़ के दो घाटों के बीच में ही बादशाही सेना को नष्ट करने का विचार किया। पहाड़ों के ये घाट ऐसे थे कि नीचे पड़ी हुई बादशाही सेना उनके ऊपर न चढ़ सकती थी। बादशाही फौज रात को वहीं थी। इतने ही में राजपूतों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। बड़ी घमासान लड़ाई हुई। अन्त में बादशाही फौज हारकर खेत छोड़ भागी। कहते हैं, औरंगजेब वहां से अकेला ही भाग निकला और दो दिन में, भूखा-प्यासा अजमेर पहुंचा।

इस प्रकार दुर्गादास ने मारवाड़ का सारा राज्य पुनः प्राप्त कर लिया और राजकुमार अजीतसिंह को गद्दी पर विठा दिया। बादशाह ने कई बार दुर्गादास के पकड़ने और मारवाड़ के जीतने की चेष्टा की, पर वह निरन्तर असफल ही होता रहा। अन्त में कई राजाओं ने बीच में पड़कर महाराजा अजीतसिंह के साथ उनकी सन्धि करा दी।

स्वामिभक्त दुर्गादास जोधपुर ही में महाराजा अजीतसिंह के पास रहे, अजीतसिंह भी उनका खूब आदर-सम्मान करते थे, लोग राज्य का कर्त्ताधर्त्ता दुर्गादास ही को समझते थे। पर दुर्गादास महाराज अजीतसिंह को राज्य का स्वतन्त्र अधिकारी बना चुके थे। राज्य के काम-काज में वे अनुचित हस्तक्षेप न करते थे। तथापि उनके कारण राज्य के प्रबन्ध में अजीतसिंह स्वतन्त्रतापूर्वक काम न कर सकते थे। इसी से उनको यह बात खटकती थी। अतएव अजीतसिंह दुर्गादास को जोधपुर से कहीं अन्यत्र रखने का विचार करने लगे।

यह बात दुर्गादास को मालूम होते ही वे अन्यत्र जाने के लिए तैयार हो गए। उन्होंने महाराज अजीतसिंह को प्रणाम किया और कहा—"लो अपना राज-पाट, मैं अब जाता हूं।" अजीतसिंह पहले तो यही चाहते थे पर जब उन्होंने दुर्गादास की स्वामिभक्ति का स्मरण किया तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे बहुत आग्रह करने लगे, पर दुर्गादास न रुके।

दुर्गादास जोधपुर से उदयपुर पहुंचे। वहां उदयसिंह ने उनका बड़ा सम्मान किया और बड़े सुख और आराम के साथ उन्हें अपने यहां रखा। अन्त समय तक दुर्गादास महाराणा उदयसिंह के ही पास रहे।

दुर्गादास के वंशजों को जोधपुर राज्य से अच्छी जागीरें मिली हुई हैं। जोधपुर राज्य में उनका वंश बड़ा प्रतिष्ठित समझा जाता है। मारवाड़ में दुर्गादास की कीर्ति का खूब ही गान होता है। ऐसे वीर और स्वामिभक्त सरदार का कीर्तिगान क्यों न हो!

४

महाराणा प्रताप

भारत भूषण 'सरोज'

हमारे देश पर, समय-समय पर बाहरी आक्रमण होते रहे हैं, किन्तु भारतीय वीरों ने सदा देश की लाज बचाई है। अकबर के शासन काल में एक ऐसे वीर योद्धा की अमर कहानी आज तक सबकी जिह्वा पर है, जिसने मुट्ठी भर निर्धन एवं असहाय भीलों को साथ लेकर बड़ी भारी शक्ति का सामना किया। महाराणा प्रताप ने हल्दी घाटी के युद्धक्षेत्र में आक्रामकों को धर पछाड़ा। शत्रु सेना का सेनानायक मानसिंह भीलों की वीरता देखकर चकित रह गया। एक कवि ने ठीक कहा है—

राणा दल की ललकार देख, अपनी सेना की हार देख।
सातंक चकित रह गया मान, राणा प्रताप का वार देख।।

देश पर बाहरी आक्रमण के कारण भारतीय एकता नष्ट हो गई थी। स्वतंत्रता के सुख को लोग भूलते जा रहे थे। कितने ही भारतीय राजे-महाराजे अपने ही भाइयों के शत्रु बन रहे थे। उस समय राजस्थान की स्थिति भी बिगड़ती जा रही थी। आक्रमण का तूफान उठ रहा था।

पर तूफान और चट्टान में कौन बड़ा है ? तूफान मकानों को गिरा देता है, वृक्षों को उखाड़ देता है, थल को जलमय बना देता है और पशु-पक्षियों को बेघर-बार का कर देता है। उस समय उसके प्रवाहों को रोकना असम्भव-सा हो जाता है। वह पानी में तेल की तरह से आकाश में फैल जाता है। उसकी गति आगे ही आगे चलती है। यहां तक कि सैकड़ों कोसों तक हाहाकार मच जाता है। आकाश और पृथ्वी जलमय दिखाई देने लगते हैं।

चट्टान अपने स्थान पर खड़ी है। वह न हिलती है न डुलती है।

तूफ़ान आया—आज नहीं आज से सदियों पहले भी आया—थोड़ी देर के लिए चट्टान को ढक दिया——उस पर चोटें कीं, उससे कुश्ती की, दो-चार वृक्ष गिरा दिये——दो-चार शिलाएं लुढ़का दीं——सिर पीटा, हाथ-पांव मारे और थक कर आगे चला गया। सैकड़ों तूफान आये और चले गये पर चट्टान अपनी जगह खड़ी है।

कहिए तूफान बड़ा है या चट्टान ? तूफान संसार की गति का उदाहरण है तो चट्टान स्थिति का। तूफान क्षण का सूचक है तो चट्टान अखण्ड काल का। तूफान एक मन का उबाल है परन्तु चट्टान मनुष्य की स्थिर प्रकृति है। दोनों में बड़ा कौन है और छोटा कौन, इसका उत्तर स्पष्ट है।

अकबर तूफान था तो प्रताप चट्टान। और तूफान जब उमड़ा तो बड़ी-बड़ी चट्टानों और अटारियों के सिर झुक गये। उसकी सेनाएं पानी की बौछार की तरह आकाश में फैल गई। उसकी वीरता ने नदी की भांति उमड़कर जंगलों को बहा दिया और ग्रामों को बरबाद कर दिया। उसकी प्रतिभा बिजली की तरह कड़ककर जिस पर पड़ी, उसे चकनाचूर कर गई। केवल वही बच रहे, जिन्होंने तूफान को देखकर सिर झुका लिया और साष्टांग प्रणाम करके अधीनता स्वीकार कर ली। या बच रही वह चट्टान, जिस पर तूफान ने ठोकर पर ठोकर मारी, बिजली फैंकी, और गरज कर डराया, पर एक न चली। अन्त में तूफान उड़ गया, आकाश साफ हो गया, न वह गरज रही, न वह चमक, पर वह चट्टान जहां की तहां सिर उठाये खड़ी रही। अकबर की प्रतिभा और उसकी सैन्य-शक्ति ने तूफान की तरह भारत को आच्छादित कर लिया——देश के शासक-रूपी वृक्ष या तो झुक गये या उखड़ गये। एक राणा प्रताप था, जो न झुका और न उखड़ा। वह अपने मान पर, अपनी आन पर डटा रहा। तूफान उड़ गया, अकबर और अकबर के वंशज राजा आये और चले गये, परन्तु राणा प्रताप का अटल आदर्श अब भी चट्टान की तरह अपनी जगह कायम है।

प्रातःस्मरणीय हिन्दूपति वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप का जन्म चित्तौड़ के महाराणा उदयसिंह की पटरानी महारानी जयवन्ती बाई के गर्भ से सन् १५४० ई० में हुआ। दिल्ली के महाप्रतापी सम्राट् अकबर

की विशाल शक्तिसम्पन्न सेना के सम्मुख मुट्ठी भर मेवाड़ियों को लेकर स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आजीवन लड़ने वाला वीर प्रताप संसार के इतिहास में अपना विशेष स्थान रखता है। वह स्वदेशाभिमानी, स्वतंत्रता का पुजारी, रणकुशल, स्वार्थ-त्यागी, नीतिज्ञ, दृढ़प्रतिज्ञ और सच्चा वीर था। उसका आदेश था कि बप्पा रावल का वंशज किसी के आगे सिर नहीं झुकायेगा। स्वदेशप्रेम, स्वतंत्रता और स्वाभिमान उसके मूल-मंत्र थे। उसको अपने वीर पूर्वजों के गौरव का गर्व था। वह कहा करता था कि यदि महाराणा सांगा और मेरे बीच कोई और न होता तो चित्तौड़ कभी मुसलमानों के हाथ न जाता।

राजपूताने के इतिहास-लेखक कर्नल टाड ने अकबर और प्रताप के संघर्ष के सम्बन्ध में लिखा है कि अ..म्य साहस, अटूट धैर्य, मान की रक्षा का भाव, सहिष्णुता और वह स्वामिभक्ति जिसकी बराबरी दुनिया में नहीं है, ये सब बढ़ी हुई महत्त्वाकांक्षा, चमकदार गुण, अनन्त साधन और मज़हबी जोश के साथ टक्कर खा रहे थे, परन्तु उनमें से कोई भी उस अजेय (प्रताप) का सामना नहीं कर सकता था। अकबर के इतिहास-लेखक विन्सेन्ट स्मिथ ने लिखा है कि अकबर के इतिहास-लेखक, उन चमकदार गुणों या अनन्त साधनों की सहायता से जिनसे कि वह अपनी बढ़ी हुई महत्त्वाकांक्षा को पूर्ण कर सका, ऐसे चौंधिया जाते हैं कि उन बहादुर शत्रुओं के लिए उनके पास सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं रहता, जिनकी बराबरी पर अकबर का महत्त्व खड़ा हुआ था। वे पुरुष और स्त्रियां भी स्मरण के योग्य हैं। शायद वे पराजित स्त्री-पुरुष विजेता की अपेक्षा अधिक महान् थे।

उदयसिंह की मृत्यु पर १५७५ ई० में प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे। उस समय मेवाड़ का राज्य हर तरह खोखला हो रहा था। खजाने में पैसे का, सेना में सिपाहियों का और दिलों में उत्साह का अभाव था। चित्तौड़ के अनमोल वीरों के हृदय निराशा के पाले से कुम्हला चुके थे। प्रताप ने सिंहासनारूढ़ होकर चारों ओर दृष्टि उठाई तो उसे बप्पा रावल की कीर्ति के खंडहरमात्र दिखाई दिये। वीर का हृदय उस विनाश के हाथ को देखकर डरा नहीं, प्रत्युत उसने दृढ़ संकल्प किया कि अपनी मां के दूध

की लाज रखेगा और चित्तौड़ की गगनचुम्बिनी चोटी पर राजपूताने के ध्वज को फिर से गाड़कर दम लेगा। कार्य बड़ा भारी था। एक ओर अकबर जैसा शक्तिशाली सम्राट् था, जिसके बढ़ते हुए छत्र के सामने वीर राजपूत सिर झुका रहे थे। सारे हिन्दुस्तान का खज़ाना उसके पास था, जिसमें करोड़ों रुपये थे। अनगिनत सिपाही तो मुगल बादशाह की आवाज पर उमड़ पड़ते थे। दूसरी ओर राजधानी से विहीन राज्य, ऊबड़ इलाका, खाली खजाना और मुट्ठी भर सिपाही। ऐसी दशा में वही वीर लड़ने की ठान सकता था, जिसकी आत्मा प्रबल हो, जो भय का नाम तक न जानता हो, जिसके लिए सांसारिक विघ्न कोई सत्ता न रखते हों और जिसका धैर्य अटूट हो। भाग्यवश महाराणा सांगा के नाती में ये गुण विद्यमान थे। प्रताप ने मां के दूध की शपथ खाकर प्रण किया कि वह मेवाड़ को स्वाधीन करायेगा और सिसोदिया वंश की लाज रखेगा। वीर की ओर वीर खिंचते हैं। बहादुर सेनापति को पाकर गुफाओं में सोये हुए शेर राजपूत भी जाग उठे और मेवाड़पति के झंडे के नीचे इकट्ठे होने लगे।

परीक्षा का समय शीघ्र ही आ गया। उस समय अकबर राजपूत कन्याओं से विवाह करके राज्य की नींव को सामाजिक सम्बन्धों के वज्रलेप से भर रहा था। जब महाराणा प्रताप के सामने यह प्रस्ताव रक्खा गया कि वह भी अपनी लड़की का डोला मुगलों के 'हरम' में भेज दे तो उसने प्रस्ताव को अपमानजनक समझा और घोषणा कर दी कि बप्पा रावल के वंश का रुधिर पवित्र रहेगा। इस एक घोषणा द्वारा मेवाड़पति ने अपने आपको मुगल सम्राट् का विरोधी बना लिया।

प्रताप का पहला कार्य राज्य की सुव्यवस्था करना था। उस समय कुम्भलमेर का किला राजधानी का कार्य दे रहा था। राणा ने उसे सुरक्षित करने के लिए कई प्रकार के यत्न किये। अन्य दुर्गों का भी पुनः संस्कार किया गया। मेवाड़ के जो प्रान्त राणा के हाथ से निकल चुके थे, उन्हें शत्रु के लिए निकम्मा बनाने की चेष्टा की गई। इस चेष्टा में प्रताप को कुछ सफलता प्राप्त हुई। यह आज्ञा प्रचालित की गई कि चित्तौड़ के नीचे के मैदानों में कोई किसान खेती न करे, कोई ग्वाला जानवरों को न चराये और कोई गृहस्थ दिया न जलाये। इस प्रदेश को बिल्कुल उजाड़

कर दिया ताकि वहां शत्रु पैर न जमा सके। इस प्रबन्ध से राणा ने अपने शत्रुओं को पास आने से रोका।

परन्तु बहुत देर तक यह पैंतरेबाजी जारी न रह सकी। राजा मानसिंह की नासमझी ने संघर्ष का अवसर शीघ्र ही उपस्थित कर दिया। राजा मानसिंह अकबर के लिए शोलापुर को जीतकर हिन्दुस्तान को वापिस आते हुए कमलमीर के किले में राणा प्रताप से मिलने के लिए ठहरा। राणा ने स्वेच्छा से आये उस अतिथि का विधिवत् सत्कार किया परन्तु भोजन के समय राणा ने स्वयं उपस्थित न होकर राजकुंवर को भेज दिया कि राणा की तबियत अच्छी नहीं है। राजा मानसिंह ताड़ गया कि राणा ऐसे आदमी के साथ भोजन नहीं करना चाहते, जिसके परिवार ने मुसलमानों के घर में डोला भेजकर राजपूती शान पर बट्टा लगाया हो। शर्माने की जगह क्रुद्ध होकर वह उठ खड़ा हुआ और चावल के कुछ दाने पगड़ी पर रखता हुआ बोला कि "तुम्हारी मानरक्षा की खातिर हमने अपनी इज्जत को खाक में मिलाया और अपनी बेटियां-बहिनें तुर्कों को दीं। लेकिन अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो ऐसा ही सही—अब इस देश में तुम न रह सकोगे। अगर मैं तुम्हारे अभिमान को चूर-चूर न कर दूं तो मेरा नाम मानसिंह नहीं।" इसी समय राणा प्रताप दरवाजे से निकल आये और शान्ति से बोले कि "मैं तुमसे भेंट करने को बिलकुल तैयार रहूंगा।" इसी समय किसी मजाकिये ने फब्ती उड़ाई कि 'अपने फूफा को साथ लाना न भूलियेगा।' क्रोध से लाल अंगार होकर मानसिंह वहां से चला गया और राणा की आज्ञा से वह स्थान खोद और धोकर पवित्र किया गया।

इस प्रकार हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई का सूत्रपात हुआ। मानसिंह ने अपना वचन पूरा किया। थोड़े ही महीने बाद राणा ने सुना कि प्रसिद्ध सेनापति महावत खां, आसफ खां और अपने फूफा के लड़के सलीम (भावी जहांगीर) को साथ लेकर मानसिंह अरावली पर्वत की घाटियों में उतर रहा है। शाही सेनाओं में मुगल राजपूत और पठान योद्धाओं के साथ जबरदस्त तोपखाना था। इस शानदार समारोह का सामना करने के लिए राणा प्रताप के पास बीस हजार बहादुर राजपूत थे और निडर हृदय

था। उसी हृदय और धर्म के बल पर खोखले खजाने का स्वामी प्रताप असंख्य धन के मालिक अकबर की विजयिनी सेना से टक्कर लेने के लिए उद्यत हो गया।

मुगल सेनाएं अरावली के दक्षिण भाग में सिर उठाकर खड़े हुए गोगुण्डा नामक किले को लेने के उद्देश्य से आगे बढ़ीं। गोगुंडा को जो रास्ता जाता है वह हल्दीघाटी नाम की घाटी में से होकर गुजरता है। राणा प्रताप ने अपनी सेनाओं को उसी स्थान पर सन्नाह किया था। घाटी के सामने चुने हुए राजपूत घुड़सवारों के साथ स्वयं राणा विराजमान थे। पहाड़ों की चोटियों और रास्तों पर भील लोग तीर-कमान और पत्थर लेकर खड़े हुए थे। मुगल सेना आगे बढ़ी, राजपूतों ने रास्ता रोका। भीषण संग्राम छिड़ गया। दोनों ओर जनसंहार होने लगा। राजपूत सरदार अपने कुल-गौरव और धर्म के नाम पर आगे बढ़-बढ़कर वार करने लगे। राजपूतों की वीरता देखकर दुश्मन दंग रह गए। राजपूत जी तोड़कर लड़े, परन्तु तोपखाने और कई गुना सिपाहियों के सामने उनकी क्या चलती ?

राणा प्रताप इस दशा को सहन न कर सके। उस वीर ने एक ही हाथ में संग्राम जीतने का निश्चय किया और स्वामिभक्त चेतक को एड़ लगाई। चेतक अपने वीर सवार को लिये मुगलों की सेना को चीरता हुआ आगे बढ़ने लगा। राणा का लक्ष्य मानसिंह के हाथी तक पहुंच कर राजपुत्र को यमलोक पहुंचाना था। दायें और बायें नेजे का वार करते हुए राणा आगे ही आगे बढ़ते जाते थे। मुगल सेना अपने सेनापति की रक्षा के लिए टूट पड़ी। उधर राजपूत सरदार राजपूताने की शान को शत्रुओं के घेरे में घिरती हुई देखकर प्राणों की ममता छोड़ आगे बढ़ने लगे।

राणा का घोड़ा शत्रुओं के समुद्र को चीरता हुआ आगे ही आगे बढ़ता गया, यहां तक कि वह मानसिंह के हाथी के सामने जा पहुंचा। सवार का इशारा पाकर चेतक कूदकर हाथी के सामने जा खड़ा हुआ और उसने अपने अगले पांव उसके मस्तक पर रख दिये। राणा प्रताप ने समय अनुकूल देखकर नेजे का भरपूर वार किया। अगर भाग्य अनुकूल होता

तो नेजा मानसिंह की छाती में लगता परन्तु भारत का भाग्य-चन्द्रमा चिरकाल से डूब चुका था। हाथी डरकर पीछे हट गया और नेजा हाथीवान ही पर रह गया। हाथीवान के गिरने पर हाथी जी तोड़कर भागा। मैदान राणा के हाथ रहा परन्तु शिकार भाग निकला।

राणा का घोड़ा चारों ओर से घिर गया। मुगल सेनाएँ सूर्य की ध्वजा का निशाना ताककर वार करने लगीं। अपने सरदार की प्राण-रक्षा के लिए राजपूत भी दोनों हाथ से तलवार चलाने लगे परन्तु उस टिड्डी-दल में से निकल जाना सरल नहीं था। राणा की वही स्वामिभक्ति फिर काम आई जो कई परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो चुकी थी। झाला सरदार मानसिंह ने मेवाड़ का राज-छत्र अपने ऊपर तान लिया और मुट्ठी भर सिपाहियों को साथ ले राणा से दूर शत्रुओं को लेकर चले जाने में सफलता प्राप्त की। राज-छत्र को देखकर मुगल सेनाएं झाला सरदार पर टूट पड़ीं। वह स्वामिभक्त बहादुर प्राणों की ममता छोड़कर अन्त तक लड़ा। कहते हैं कि जिस जगह झाला सरदार की लाश गिरी वहां सौ से अधिक शत्रुओं की लाशें पड़ी थीं और वीर के दोनों हाथों में तलवारें थीं। इसमें सन्देह नहीं कि अपने बान्धवों सहित स्वामी के लिए बलि देकर झाला सरदार ने उन अमर बहादुरों में नाम लिखा लिया जिनके कारण राजपूताने का इतिहास उज्ज्वल हो रहा था। शत्रु का झुकाव दूसरी ओर होते देखकर राणा भीड़ में से निकल कर सुरक्षित स्थान में चले गये।

यद्यपि इस युद्ध में मुगलों को सफलता न हुई और उन पर राजपूतों की वीरता का त्रास बैठ गया फिर भी मेवाड़ की युद्ध-शक्ति इस लड़ाई में बहुत कुछ कम हो गई। राणा ने उसे बहुत संभालने का यत्न किया। परन्तु शीघ्र सफलता न हुई। किले के पीछे किला हाथ से निकलता गया, यहां तक कि सभी बड़े-बड़े दुर्ग मुगलों के हाथ में चले गये। राणा को महलों और किलों से अकेला जाकर पहाड़ों और जंगलों का निवासी बनना पड़ा। जाओ और राजपूताने के गायकों और भाटों के मुंह से उस क्षत्राणी के पुत्र की वीर कथाओं का श्रवण करो। जिस समय राजपूताने के कुलीन छत्रपति अपनी कुल-मर्यादा को अकबर की भेंट चढ़ा रहे थे, जिस समय भारत का सौभाग्य-सूर्य काले-काले बादलों से आच्छादित

हो रहा था और अकबर की गति अनिवार्य प्रतीत होती थी उस समय खाली खजाने और मुट्ठी भर सिपाहियों का स्वामी प्रतापसिंह बप्पा रावल के नाम, सिसोदिया के राज-छत्र, और कुल-मर्यादा की ध्वजा को हाथ में लिये, कंटीले जंगलों और भीषण घाटियों में, अपने परिवार और थोड़े से साथियों को घसीटता फिरता था।

पांच-पांच समय बिना खाये निकल जाते थे, पूरी रात सोना नहीं मिलता था, गुफाओं में छिपकर प्राण-रक्षा करनी पड़ती थी, परन्तु दिल में यही संकल्प था कि क्षत्राणी के दूध का मान न घटे, सिसोदिया कुल की ध्वजा नीची न हो और हिन्दू धर्म की शान पर धब्बा न लगे। प्रतापसिंह तुम सच्चे राजपूत थे, तुमने मनुष्य जाति के सामने वीरता, आत्म-सम्मान और धैर्य का ऐसा दृष्टांत रखा है कि यदि मुर्दा जातियां उसका थोड़ा-सा भी अनुकरण करें तो उनका बेड़ा पार हो सकता है। शत्रु को भी तुम्हारे गुणों का गान करना पड़ेगा।

महाराणा प्रताप की सफलता का सबसे बड़ा कारण उनकी दृढ़ता है। राणा ने दृढ प्रतिज्ञा की थी कि :

> "जब तक मैं चितौड़ के दुर्ग पर केसरिया ध्वज न फहरा दूं, तब तक चैन की सांस न लूंगा, सोने-चांदी के पात्रों को छोड़ पत्तलों में भोजन करूंगा, महलों के भोग-विलास छोड़ झोंपड़ी में रहूंगा और तब तक नख-केश भी न कटाऊंगा।"

५

झाँसी की महारानी वीरांगना लक्ष्मीबाई

बाबू गुलाबराय

तजि कमलासनु कर कमलु, गहि तुरंग तरवार।
कुल कमला काली भई, झांसी-दुरग दुआर ॥
—वियोगी हरि

"वर्षा का अन्त हो गया। कुवार उतर रहा था। कभी-कभी झीनी-झीनी बदली हो जाती थी। परन्तु उस संध्या के समय आकाश बिलकुल स्वच्छ था। सूर्यास्त होने में थोड़ा सा विलम्ब था। बिठूर के बाहर गंगा के किनारे तीन अश्वारोही तेजी के साथ चले जा रहे थे। तीनों बाल्यावस्था के—एक बालिका, दो बालक थे एक बालक की आयु १६-१७ वर्ष, दूसरे की १४ से कुछ ऊपर और बालिका की तेरह से कम।

बड़ा बालक कुछ आगे निकला था कि बालिका ने अपने घोड़े को एड़ लगाई। बोली—"देखूं कैसे आगे निकलते हो।" और वह आगे हो गई। (झांसी की रानी, लक्ष्मीबाई—वृन्दावन लाल वर्मा)

ये बालक साधारण नहीं; १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम के वीर सेनानी थे। दोनों बालक बाजीराव के दत्तक-पुत्र नाना साहब और राव साहब थे। यह साहसी बालिका स्वतन्त्रता की देवी लक्ष्मीबाई थी, जिन्होंने १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये, उन्हें उनके अन्यायपूर्ण कृत्यों पर विचार करने के लिए विवश कर दिया। यह वही वीरांगना थी जिसकी सिंह-गर्जना से विदेशी-शासन का जर्रा-जर्रा कांप उठा था।

लक्ष्मीबाई का जन्म १९ नवम्बर सन् १८३५ को काशी में हुआ था।

उनके पिता मोरोपन्त तांबे महाराष्ट्र प्रदेश के अन्तर्गत सतारा के समीप कृष्णा नदी के किनारे बाई गांव के रहने वाले थे। वे ब्राह्मण थे। उन दिनों मोरोपन्त अपने मित्र बाजीराव के छोटे भाई चीमाजी के साथ काशी में रहते थे। लक्ष्मीबाई की माता का नाम भागीरथी देवी था। वे सुशील, सेवापरायण और साध्वी स्त्री थीं। मोरोपन्त को कन्या-जन्म से बहुत आनन्द हुआ। उनके जीवन में कोई अभाव नहीं था किन्तु उन्हें संतान का मुख देखने की लालसा थी। लक्ष्मीबाई के जन्म से उनकी हरी-भरी जीवन-वाटिका में वसन्त आ गया। नवजात कोयल की कुहुक से मोरोपन्त और उनकी पत्नी आनन्द-विभोर हो गए। बालिका का नाम मनूबाई रखा गया।

दिन सदा एक से नहीं रहते। एक दिन काल आया और अकाल में ही चीमाजी को ले गया। मोरोपन्त को इससे बड़ा दुःख हुआ। मनू तो इस समय दुधमुंही बच्ची थी। मोरोपन्त ने काशी छोड़ने का निश्चय कर लिया। इसी समय उन्हें पेशवा बाजीराव का निमंत्रण मिला। पेशवा को ईस्ट इण्डिया कम्पनी से आठ लाख रुपये की पेन्शन मिलती थी। उन्हें अपने भाई की मृत्यु से बड़ा धक्का पहुंचा। अतः मोरोपन्त ने पेशवा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया और बिठूर (ब्रह्मावर्त) में आ गये।

मोरोपन्त परिवार के दिन सुख से व्यतीत हो रहे थे। मनू के सौन्दर्य, तुतले बोल और बाल-सुलभ कर्मों पर पति-पत्नी मुग्ध हो जाते थे। किन्तु शायद परमात्मा को कुछ और ही स्वीकार था। भागीरथी बाई अस्वस्थ हो गई। चिकित्सकों ने जवाब दे दिया। और चार वर्ष की बालिका का मातृ-स्नेह विधाता ने छीन लिया।

पत्नी की मृत्यु के बाद बालिका के पालन-पोषण का भार मोरोपन्त पर आ पड़ा। अब मनू के लिए पिता ही माता-पिता दोनों थे। वे अपनी लाड़ली को अकेला नहीं छोड़ते थे। वह अपने पिता के साथ ही रहती। मनू को रूप-दान देने में विधाता ने कंजूसी नहीं की थी। जो भी बच्ची को देखता, वही उसके नयनाभिराम रूप पर मुग्ध हो जाता। इसी कारण उसको 'छबीली' कह कर पुकारा जाने लगा। इस समय बाजीराव के

दत्तक पुत्र नाना साहब और राव साहब भी छोटे ही थे। अतः दोनों साथ-साथ ही खेला करते थे। मनूबाई बड़ी नटखट, साहसी और चतुर बालिका थी। उसने थोड़े ही दिनों में कुश्ती लड़ना, घोड़े पर चढ़ना, तीर चलाना, तलवार चलाना सीख लिया। छबीली का पालन-पोषण बेटों के समान ही होता था, अतः उसमें धीरे-धीरे वीर-पुरुषोचित गुणों का समावेश होने लगा। उसे शिकार का शौक हो गया। मनू ने मराठी, संस्कृत और हिन्दी का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

उन दिनों पेशवा के पास दूर-दूर से ज्योतिषी आया करते थे। एक दिन झांसी के राज-ज्योतिषी पेशवा से मिलने आये। इनका नाम न्यात्या दीक्षित था। मोरोपन्त का इनसे पूर्व परिचय भी था। मोरोपन्त ने उन्हें अपनी लाड़ली 'छबीली' की पत्रिका दिखाई और उसके योग्य वर ढूंढ़ने की प्रार्थना की। ज्योतिषी ने पत्रिका देखकर कहा—"इस बालिका को राजयोग है अतः यह तो महारानी बनेगी। कुछ ही दिनों बाद सन् १८४२ ई० में झांसी के महाराज गंगाधरराव से लक्ष्मीबाई का विवाह हो गया। गंगाधरराव का दूसरा विवाह था, पहली पत्नी को मरे कई वर्ष हो चुके थे। इस समय बालिका लक्ष्मीबाई की आयु केवल सात वर्ष की थी विवाह के समय एक बड़ी ही मनोरंजक घटना घटी। पुरोहित वृद्ध थे, उनके हाथ कांपते थे। जब पुरोहित जी गठ-बन्धन करने लगे तो गांठ लगाने में कठिनाई हुई। लक्ष्मीबाई तो नटखट और उत्साही थी, भला उन्हें जरा से काम में इतना विलम्ब सहन कैसे होता ? उन्होंने स्वयं गांठ बांधने के लिए हाथ बढ़ाया परन्तु समय का विचार करके रह गई। फिर भी उन्होंने कह ही दिया—"पुरोहित जी ! ऐसी गांठ बांधना जो कभी न खुले।"

लक्ष्मीबाई को पाकर गंगाधरराव फूले नहीं समाये और प्रजा ऐसी देवी को पाकर खुशी में झूम उठी। मोरोपन्त भी झांसी दरबार में प्रतिष्ठित दरबारी हो गये। उन्होंने भी दूसरा विवाह कर लिया। सन् १८५१ में लक्ष्मीबाई को एक पुत्ररत्न हुआ। सारे राज्य में आनन्दसागर हिलोरें लेने लगा। दुर्दैव से तीन मास बाद ही नवजात शिशु माता-पिता और प्रजा को शोक-सागर में डुबा कर चल बसा। महाराज का वृद्ध हृदय

दैव के इस प्रहार को सहन नहीं कर सका। उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। चिकित्सा के उपरान्त भी रोग बढ़ता ही गया। महाराज के जीवन की आशा न रही। तब १८५३ ई० में उन्होंने हिन्दू विधानानुसार आनन्दराव नामक पांच-वर्षीय बालक को गोद ले लिया। इसका नाम दामोदरराव गंगाधरराव रखा गया।

उस समय झांसी राज्य अंग्रेजों की छत्रछाया में था। अतः महाराज ने दत्तक पुत्र लेने की सूचना एक पत्र लिखकर मेजर एलिस द्वारा पोलिटिकल एजेन्ट को भिजवा दी। उसमें उन्होंने दामोदरराव को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और लिखा कि उनकी नाबालिगी तक शासन का समस्त कार्य लक्ष्मीबाई के हाथ में रहेगा। इस प्रकार राज्य का सारा प्रबन्ध करके गंगाधरराव सदा के लिए सो गये और लक्ष्मीबाई पर बिजली गिर पड़ी। २१ नवम्बर सन् १८५३ को अठारह वर्ष की तरुणी लक्ष्मीबाई की मांग का सिन्दूर पुंछ गया।

महाराज की मृत्यु से सारे राज्य में शोक छा गया। महाराज की अर्थी के साथ प्रजा और अंग्रेज अधिकारी भी गये। दाह संस्कार के बाद ही मेजर एलिस शाही खजाने में पहुंचा। इधर महारानी लक्ष्मीबाई अपने दुर्भाग्य पर रो रही थीं और उधर स्वार्थी मेजर खजाने पर सील लगा रहा था। उसने सील लगा कर उसकी रक्षा के लिए अंग्रेजी सेना नियत कर दी। एलिस ने राजनीतिक एजेन्ट मॉलकम हेली को महाराज की मृत्यु की खबर भेजी। हेली ने गवर्नर-जनरल को सूचना दी और दत्तक पुत्र को अवैध घोषित करते हुए उसे षड्यंत्र बतलाया। इधर खानदेश में महाराज गंगाधरराव के किसी दूर के सम्बन्धी सदाशिवराव ने झांसी की गद्दी पर अपने अधिकार का दावा किया। हेली तो यह चाहता ही था, उसने उसे सहायता का आश्वासन दिया।

इस समय डलहौजी गवर्नर-जनरल था। उसकी नीति "फूट डालो और राज करो" की थी। इसी नीति से उसने सिक्किम, दार्जिलिंग, अर्काट, तंजौर, सम्बलपुर और खैरपुर को हड़प लिया था। अब उसकी गिद्ध-दृष्टि झांसी पर लगी हुई थी। इस बीच महारानी ने एक पत्र गवर्नर-जनरल के पास भेजा। परन्तु एलिस और हेली ने वह बीच में ही दबा

लिया। अन्त में १७ फरवरी, १८५४ को कलकत्ता में कौन्सिल ने फैसला दिया--"..............और हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि महाराज को गोद लेने का हक न था। बुन्देलखंड के पोलिटिकल एजेन्ट ने महारानी को पेन्शन देने की सिफारिश की है, उसे हम मानते हैं। और उन्हें पेन्शन दे दी जाय। मॉलकम हेली ने सदाशिव की जो सिफारिश की है, वह ठीक नहीं। और ऐसी हालत में हमारी राय में झांसी राज्य का सरकारी प्रबन्ध गवर्नर-जनरल के हाथों में चला जाना चाहिए। अर्थात् झांसी को अंग्रेजी राज्य में शामिल कर लिया जाय।" इस निर्णय के अनुसार २ अगस्त सन् १८५४ को झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। महारानी को अंग्रेजों के न्याय पर विश्वास था अतः उसने एक अंग्रेज और उमेश चन्द नामक वकील को ५० हजार रुपया देकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों के सामने अपील करने के लिए भेजा लेकिन वे इतने नीच निकले कि रुपये लेकर चलते बने। डलहौजी ने झांसी के कोष से ६ लाख रुपया यह कह कर ले लिया कि राजकुमार के वयस्क होने पर दे दिया जाएगा। विवश महारानी जहर का घूंट पीकर रह गई।

अंग्रेजों के नीचतापूर्ण कृत्यों से जनता में असंतोष बढ़ता जा रहा था। उनके अन्याय की कहीं सुनवाई नहीं थी। लक्ष्मीबाई ने घोर विरोध किया किन्तु राजमद में बेहोश अंग्रेजों के कानों पर जूं तक न रेंगी। लार्ड डलहौजी ने बाजीराव पेशवा की मृत्यु के पश्चात् उनके दत्तक पुत्रों, लक्ष्मीबाई के बाल-साथियों की पेंशन बन्द कर दी। इसी समय कहते हैं, गाय और सूअर की चरबी कारतूसों में लगाई जाती थी। अतः हिन्दू-मुस्लिम सैनिकों में बड़ा असन्तोष फैला। अंग्रेजों ने अनीतिपूर्वक सतारा, झांसी और नागपुर को भी अपने राज्य में मिला लिया। गोला-बारूद सब तैयार था। अचानक संयुक्त प्रान्त की कई छावनियों में विद्रोह का विस्फोट हुआ। सबसे पहले २५ अप्रैल सन् १८५७ में मेरठ की छावनी के सैनिकों ने विद्रोह का झंडा उठाया। फिर तो यह आग तेजी से संयुक्त प्रान्त में फैल गई। अंग्रेज विद्रोह की भयानकता से कांप उठे। झांसी भी इन लपटों में घिर गया।

विदेशियों के अत्याचारों से असंतुष्ट सैनिक और जनता ने अंग्रेजों पर

आक्रमण किया। लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों को शरण दी पर सैनिक बढ़ते गये और वे महारानी के पास तक जा पहुंचे। महारानी से उन्होंने तीन लाख रुपयों की मांग की, इस पर महारानी ने उन्हें अपने गहने देकर विदा किया। अंग्रेज अफसर या तो मार डाले गये या अपनी जान बचा कर भाग गये थे। इस समय झांसी राज्य शासक-विहीन हो गया था। इसकी सूचना महारानी ने अंग्रेजों को भिजवा दी। सागर कमिश्नर ने लिख भेजा कि झांसी का प्रबन्ध आप खुद करें। हम सहायता देने में असमर्थ हैं। महारानी ने विश्वस्त अफसरों की राय से शासन-प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया और सारे प्रदेश में घूम-घूम कर शान्ति स्थापित की। दुर्भाग्य से इस समय लक्ष्मीबाई को योग्य सहायक नहीं मिल सके। सदाशिव ने, जो कि अपने को झांसी का उत्तराधिकारी मानता था, झांसी पर आक्रमण कर दिया। उसने करेरा का किला जीत लिया। खबर पाकर महारानी ने करेरा के किले पर आक्रमण किया और सदाशिव को कैद कर लिया। इसके कुछ समय बाद ओरछा के दीवान नत्थे खां ने झांसी पर चढ़ाई कर दी। महारानी बुरे संकट में पड़ गई। फिर भी उसने साहस से काम लिया। उसने झांसी राज्य के पुराने सरदारों की एक सभा बुलाई और उसमें दीवान जवाहर सिंह को कंगना बांधा। बस बुन्देले आन पर डट गये। पुरानी तोपें निकाली गई। किलेबन्दी की गई। रणबांकुरे इकट्ठे हुए और नत्थे खां को मुंह की खानी पड़ी। हार खाकर नत्थे खां प्रतिशोध की भावना से अंग्रेजों से जा मिला। उसने उन्हें महारानी के विरुद्ध भड़काया। महारानी बागी समझी जाने लगी और सर ह्यूज को भारत बुलाया गया। सर ह्यूज कानपुर, सागर और शाहगढ़ जीतता हुआ झांसी की ओर बढ़ा।

जब लक्ष्मीबाई को इसकी खबर मिली तो उसे बहुत दुःख हुआ। वह अभी तक अंग्रेजों का साथ देती आ रही थी परन्तु प्रतिदान में उसे इस प्रकार का व्यवहार मिला। महारानी के हृदय पर चोट पहुंची। इस पर सर ह्यूज ने महारानी को किला खाली करके खाली हाथ बाहर निकल आने के लिए पत्र लिखा। इस अपमानजनक पत्र को पाकर स्वाभिमानी रानी सिंहनी के समान गरज उठी। उसने युद्ध करने की

ठान ली। बहुत से मराठे भी उसकी सहायता के लिए आ पहुंचे। २३ मार्च को दोनों ओर से गोलाबारी शुरू हुई और १२ दिन तक घमासान युद्ध हुआ। इस बीच तांत्या टोपे महारानी की सहायता के लिए आये परन्तु उन्हें भी विशेष सफलता नहीं मिली। एक विश्वासघाती दूलाजी नामक व्यक्ति ने ओरछा फाटक पर आसानी से सीढ़ी लगाने का मार्ग बना दिया। अब पश्चिम की ओर से अंग्रेजों के विध्वंसकारी आक्रमण होने लगे। उन्होंने दृढ़तापूर्वक प्रजा की रक्षा की। गोरी फौज आगे बढ़ती आई और दरवाजा तोड़ डाला गया। प्रजा पर निर्दयतापूर्वक अत्याचार होने लगे। महारानी का नारी हृदय करुणार्द्र हो गया और उसने अपने सब नौकरों को गुप्त मार्ग से निकल जाने का आदेश दिया। स्वयं एक घोड़े पर सवार होकर, दामोदरराव को पीठ पर बांध कर सैनिकों सहित उत्तर द्वार से कालपी की ओर चल दी। रानी के पीछे ही उसके पिता हाथी पर अपना धन लिए चले आ रहे थे। वे पकड़ लिये गए और सर ह्यूज ने उन्हें फांसी पर लटका दिया। झांसी का किला अंग्रेजों के हाथ में आ गया और उन्होंने लूटमार और हत्या करके निरीह नागरिकों से खूब बदला लिया।

लेफ्टीनेंट बौकर ने २१ मील तक लक्ष्मीबाई का पीछा किया। दूर से उन्हें एक तम्बू दिखाई दिया। बौकर प्रसन्न हो गया; किन्तु जब वे लोग वहां पहुंचे तो जलपान के सामान के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगा। वे लोग महारानी का पीछा करते रहे। महारानी पांच अप्रैल को मांडेर नामक स्थान पर पहुंची। रानी के साथ केवल १२ सैनिक बच रहे थे। न सेना थी; न युद्ध के साधन। वीरांगना इस कठिन स्थिति में भी भयभीत नहीं हुई और सामना करने के लिए तैयार हो गई। बौकर साहब उसे पकड़ने के लिए घोड़ा दौड़ाते हुए आये. किन्तु लक्ष्मीबाई ने तलवार का ऐसा हाथ चलाया कि साहब बहादुर चारों खाने चित्त हो गये। इस प्रकार वह वीर रानी लगातार २४ घंटे तक चलती रही और ५ अप्रैल की आधी रात को ही १०२ मील चलकर यमुना के तट पर कालपी नामक स्थान पर जा पहुंची। इस स्थान पर पेशवा नाना साहब के भाई राव साहब अपनी छावनी डाले पड़े हुए थे। यह स्थान अंग्रेजों की पहुंच से बाहर समझा जाता था, क्योंकि झांसी और कानपुर के बाग़ी सैनिकों ने राव

साहब की कमान में कालपी पर अधिकार कर रखा था और नाना साहब कानपुर थे।

यहां पहुंच कर रानी ने विश्राम किया और प्रातःकाल अपने पहुंचने की सूचना पेशवा को भिजवाई। खबर पाते ही पेशवा की आज्ञा से तांत्या टोपे ने आकर महारानी का स्वागत किया और सादर उन्हें कालपी ले गया। ६ अप्रैल को महारानी लक्ष्मीबाई रावजी के दरबार में उपस्थित हुई। दोनों ने एक दूसरे को देखा। बचपन की याद करके वे गद्‌गद हो गये और आंखों से आंसू बह निकले। लक्ष्मीबाई बहुत योग्य राजनीतिज्ञ थीं। उन्होंने अपनी खून से सनी तलवार निकाल कर गंभीर वाणी में कहा—"भाई साहब! यह तलवार आपके पूर्वजों ने हमें दी थी। इसी के बल पर मैंने अरिदल-मर्दन किया। अब मैं अबला आपकी सहायता और कृपा के अभाव में इसकी मर्यादा रखने में असमर्थ हूं। आप वीर हैं, अतः यह आपको सौंपती हूं।" वीरांगना की चेतावनी से वीर रावजी के अंग-प्रत्यंग फड़क उठे और उसने महारानी के वीरतापूर्वक कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा—"हम तुम्हारे साथ थे, साथ हैं और रहेंगे।" यह कह कर उन्होंने लक्ष्मीबाई से तलवार उनके पास ही रखने का अनुरोध किया। महारानी ने दरबार में प्रतिज्ञा की—"मेरे वीर भाई और अन्य वीरो! जब तक मेरे शरीर में रक्त की एक भी बूंद बाकी रहेगी, जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेंगे, मैं इस तलवार का सम्मान करूंगी।" अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की तैयारियां होने लगीं। चारों ओर से वीर स्वातंत्र्य-संग्राम में सम्मिलित होने के लिए पेशवा के ध्वज के नीचे एकत्र होने लगे। सर ह्यूज को जब यह खबर लगी तो उसने इनको शक्ति एकत्र करने का अवसर देना योग्य न समझा और २५ अप्रैल को कालपी की ओर कूच कर दिया। कोंच गांव के पास दोनों दलों की मुठभेड़ हुई। विद्रोही घिर गये और उनकी हार हुई। महारानी ने रावजी को बतलाया कि उनकी हार का कारण व्यवस्था की कमी ही था। परन्तु राव जी ने स्त्री के सामने झुकना अपने सम्मान के विरुद्ध समझा और रानी का मान रखने के लिए उन्हें २५० सवार देकर यमुना-तट की रक्षा का भार सौंपा।

अवसर पाकर खुले मैदान में रावजी की सेना ने अंग्रेजों की सेना

पर धावा बोल दिया। जम कर लड़ाई हुई। परन्तु जब अंग्रेजों की तोपें आग उगलने लगीं तो रावजी की सेना के पांव उखड़ गये और वह भागने लगी। इसी समय लक्ष्मीबाई आ पहुंची। इससे युद्ध में नया उत्साह आ गया, लेकिन तोपों का सामना न कर सकने के कारण सेना को किले की शरण लेनी पड़ी। फौरन अंग्रेजी फौजों ने किला घेर लिया। पेशवाई सेना को तैयारी का अवसर नहीं दिया, फिर भी पेशवाई सेना ने अंग्रेजों की अग्निवर्षिणी तोपों का करारा जवाब दिया। अन्त में पेशवाई सेना के पांव उखड़ गये और राव साहब को २४ मई के दिन सारा सामान छोड़ कर अपने साथियों समेत भागना पड़ा। दूसरे दिन कालपी के किले पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

कालपी से भाग कर रावजी, पेशवा और लक्ष्मीबाई ग्वालियर से ४६ मील दूर गोपालपुर पहुंचे। वहां इनसे तांत्या टोपे और बांदा के नवाब भी आ मिले। यह समय इन लोगों के लिए बड़े संकट का था। अतः इस विकट स्थिति का सामना करने के लिए विचार-विमर्श होने लगा। लक्ष्मीबाई ने कहा कि जब तक किसी सुदृढ़ किले पर अधिकार न कर लिया जाय, अंग्रेजों का मुकाबला करना कठिन है। पास ही ग्वालियर का किला था। उस समय वहां जियाजीराव सिंधिया का शासन था। उसने देशवासियों का साथ न दिया। अतः युद्ध हुआ। रानी ने अपने साथियों की सहायता से किला जीत लिया। रानी का कौशल देखकर तरुण जियाजीराव भी दंग रह गये और वे आगरा भाग गये। आशा थी कि पेशवा अब शक्ति-संचय कर लेंगे। परन्तु वे भोग-विलास में लिप्त हो गये। रानी ने समय-समय पर चेतावनी दी परन्तु उन पर कोई असर न हुआ। जब सर ह्यूज सर पर चढ़ आया तो राव साहब और तांत्या टोपे की आंखें खुलीं। मुरार की छावनी में युद्ध हुआ। इसमें पेशवाई सेना को मुंह की खानी पड़ी। इस युद्ध में महारानी सम्मिलित नहीं हुई थी। नायकों को अपनी भूल समझ में आई और रावजी ने तांत्या टोपे को महारानी के पास भेजा। महारानी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

अंग्रेजी सेना ग्वालियर पर चढ़ आई। महारानी ने भी शंख फूंक

दिया। महारानी ने इस युद्ध में अद्वितीय शौर्य का परिचय दिया। सर ह्यूज ने महारानी से लड़ने के लिए कर्नल स्मिथ को भेजा लेकिन महारानी तो दुर्गा का विकराल रूप धारण करके अरि-मर्दन कर रही थीं। अंग्रेज सैनिक बुरी तरह काट दिये गये। दो दिन तक युद्ध का रुख पेशवाई सेना के पक्ष में रहा। तीसरे दिन स्थिति बदल गई। सर ह्यूज ने महारानी का मुकाबला करने के लिए सेना बढ़ा दी। कुछ पुराने विश्वासघाती सैनिक अंग्रेजों से जा मिले। रानी चारों ओर से घिर गई। अब रानी मैदान में आ गई। रानी के शौर्य को देखकर अंग्रेज स्तम्भित हो गए। रानी की सेना धीरे-धीरे घटने लगी। दूसरी ओर नवाब बांदा और बाणपुर के राजा अंग्रेजों के सामने अधिक देर तक नहीं टिक सके। तांत्या टोपे ने आगे बढ़कर रानी की सहायता करनी चाही परन्तु ह्यूज ने उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया। ग्वालियर का किला अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

महारानी अपने कुछ साथियों सहित निकल भागीं। अंग्रेजों ने उनका पीछा किया। रानी के साथी मारे गए। लक्ष्मीबाई को एक गोली लगी। किन्तु फिर भी वह बढ़ती ही गई। सामने दुर्भाग्य से एक नाला पड़ा। महारानी का घोड़ा मर चुका था और वह एक नये घोड़े पर सवार थी। वह अड़ गया। इसी समय अंग्रेजों ने उन्हें आ घेरा। अन्य कोई उपाय न देख कर घायल सिंहनी ने शत्रुओं का सामना किया। कई विरोधी मौत के घाट उतार दिये। आखिर वह कहां तक सहन करती। सारा शरीर छिद गया, फिर भी लड़ती जा रही थी। इसी समय पीछे से एक सिपाही ने उनके मस्तक पर तलवार का वार किया। उनके सिर के दो भाग हो गये और दाहिनी आंख निकल पड़ी। रानी ने आत्मसमर्पण नहीं किया, लड़ती ही रही। इसके बाद एक सवार ने उनके सीने में किर्च भोंक दी। रानी ने देखा कि अब अन्तकाल समीप है तो उसने अपने विश्वासपात्र सरदार रामचन्द देशमुख को इशारा किया और काशीबाई तथा रामचन्द उन्हें एक झोंपड़ी में ले गये। वीरांगना को लिटा दिया गया और उसके मुंह में गंगाजल डाला गया। रानी ने जी भर कर दामोदरराव को देखा। उसके मुख पर सन्तोष झलक रहा था, अलौकिक वीरश्री दमक

रही थी। कुछ देर बाद महारानी ने ज्येष्ठ शुक्ल ७ सं० १९१४ (सन् १८५७) को प्राण त्याग दिये। सूर्यास्त का समय था। उधर भगवान् भुवन भास्कर आकाश में महारानी के शौर्य का लोहित इतिहास लिखकर बिदा ले रहे थे और इधर धरती पर वीरांगना के रक्त की प्रत्येक बूंद मिट्टी में उसका अमर इतिहास लिख रही थी। सूर्यास्त समीप देख कर चिता सजाई गई और शव को रख कर आग लगा दी गई। लकड़ियां अधिक नहीं थीं किन्तु फिर भी ज्वाला धधक उठी। चिनगारियां ऊंची-ऊंची उठने का प्रयत्न कर रही थीं मानो वे देवों को स्वतन्त्रता की अमर देवी की अमर गाथा सुना रही थीं—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥"

सूर्य अस्त हो गया। चिता की लपटें भी कम हो गईं। आकाश अरुण हो गया मानो वीर हुतात्मा के स्वागत के लिए स्वर्ग की अप्सराओं ने कुंकुम-गुलाल उड़ाया हो। पक्षीगण देवी का गुणगान करने लगे। चिता बुझ गई किन्तु उसकी ज्योति तारों में समा गई। स्वर्ग में लक्ष्मीबाई को पाकर तारों की द्युति बढ़ गई थी। आज भी महारानी की समाधि, टूटी-फूटी समाधि, अपना अमर इतिहास लिए स्थित है। काशी, बिठूर, झांसी, कालपी और ग्वालियर उस देवी के कीर्ति-स्तंभ हैं। जबतक भारत है और भारतवासियों में स्वदेशाभिमान है इस देवी का आदर से स्मरण किया जाता रहेगा।

यहां रानी की मृत्यु के बाद कई दिनों तक अंग्रेजों को इसका पता नहीं लगा। मृत्यु का पता लगने पर जनरल सर ह्यूज ने कहा—"यह उनमें श्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट वीरांगना थी।" (She was the best and the bravest of them all).

यों तो सारे भारत के हृदय में ही महारानी की वीरतापूर्ण मृत्यु चिर नवीन है फिर भी बुन्देलखंड, विशेष रूप से झांसी में, होली जलाने के बाद झांसी निवासी अपनी महारानी के शोक में फाग नहीं खेलता, शोक मनाता है। आज भी बुन्देले और हरबोलों के मुंह से उस रानी की कीर्ति सुनाई

पड़ती है । महारानी झांसी राज्य के लोक-जीवन में प्रविष्ट हो गई, लावनियों में, फागों में, दादरों और सोहरों में किसान-मजदूर इस देवी के प्रति कृतज्ञतापूर्ण भाव प्रदर्शित करते हैं । महारानी का प्रयत्न दैव-दुर्विपाक से, कुछ अभावों के कारण सफल नहीं हुआ, नहीं तो भारत का मानचित्र ही दूसरा होता ।

६

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हरिभाऊ उपाध्याय

मुझे रोम्या रोला का वह वाक्य याद आता है कि गांधी और रवीन्द्रनाथ एक हिमालय से निकल कर पूर्व और पश्चिम में बहने वाली गंगा और सिंधु के सदृश दो धाराएं हैं। रवीन्द्र और गांधी, संसार को आर्य संस्कृति की दो महान् देन हैं। एक में उसके हृदय की सुकुमारता और दूसरे में उसकी आत्मा की तेजस्विता चमक रही है। दोनों इतने महान् हैं कि हमारी स्थिति कबीर की तरह हो जाती है—"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।"

कविवर वैसे बनर्जी-कुल के हैं, किंतु समाज में माननीय होने के कारण उनका वंश ठाकुर कहलाता है। 'टैगोर' इसी का अंग्रेजी मुलम्मा चढ़ा हुआ रूप है। यह टैगोर-कुल केवल बड़े जमींदार के ही नहीं, किन्तु कला और साहित्य के उच्च मर्मज्ञों के रूप में भी बहुत दिनों से प्रसिद्ध रहता आ रहा है। विगत शताब्दी में जो सांस्कृतिक एवं सामाजिक सुधार हुए हैं, उनसे ठाकुर-कुल का गहरा सम्बन्ध रहा है। उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर और पितामह द्वारकानाथ ठाकुर ब्रह्म-समाज के बहुत आगे बढ़े हुए सदस्यों में से थे। वे मूर्तिपूजा और अन्धविश्वासों के कट्टर विरोधी थे। यह उनके ही सतत परिश्रम का फल था कि ब्रह्म-समाज वर्तमान भारतीय जीवन पर अनेक प्रकार के गहरे प्रभाव डाल सका। कहा जाता है कि इसी वंश के कुछ व्यक्तियों ने मुसलमानों के साथ भोजन करके जाति के नियम को भंग किया था। विदेश-यात्रा के सम्बन्ध में भी उस समय जाति की ओर से कड़ी पाबन्दी थी। द्वारकानाथ पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इंग्लैंड जाकर इस पाबन्दी को तोड़ा। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने भी इस आत्म-स्वातन्त्र्य को कायम रखा। किन्तु वह अपने पिता की भांति

भारतीय अन्ध-विश्वास और रूढ़ियों के इतने कट्टर विरोधी नहीं थे। धीरे-धीरे उनमें आध्यात्मिक विचारों की प्रधानता होने लगी। प्रार्थना और तपस्या की ओर उनकी प्रवृत्ति बढ़ती गयी। उन्होंने हिमालय की उच्च पर्वत-श्रेणियों में बहुत भ्रमण किया। एक बार आप छः वर्षीय बालक रवीन्द्रनाथ को भी अपने साथ ले गये थे।

रवीन्द्रनाथ का जन्म मंगलवार ७ मई, सन् १८६७ ई० को ३ बजे प्रातःकाल कलकत्ते में हुआ। इनकी माता का नाम शारदा देवी था। यह अपने पिता की १४वीं सन्तान थे। इसमें सन्देह नहीं कि रवीन्द्रनाथ को प्रारम्भिक स्फूर्ति अपने पिता से ही मिली। वह प्रायः उनके पास बैठा करते थे। अपने पिता के ध्यान के समय वह उनके पास खेला करते थे। उस समय जो भी नयी चीजें वह देखते थे वे सब उनके लिए नयी खोजें थीं। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने अपने पिता से ध्यान, प्रार्थना, एकान्त-प्रेम, शान्ति आदि बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें सीखीं, जिनसे उनके मनुष्यत्व का विकास हुआ।

बाल्यकाल में ही उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। पिता आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित हो चुके थे, अतएव उन्हें बाल्यकाल में सुख नहीं मिला। नौकरों की देख-रेख में उनका बहुत-सा समय बीता। विद्याध्ययन के लिए उन्हें स्कूल भेजा गया, किन्तु उनका मन स्कूल की पढ़ाई में न लगा। लाचार उन्हें घर पर ही पढ़ाने का प्रबन्ध किया गया। १८७३ ई० में उनका उपनयन संस्कार हुआ। इसी वर्ष उन्होंने 'पृथ्वीराज पराजय' नामक नाटक की रचना की। दूसरे वर्ष १८७४ ई० में उन्होंने शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'मैकबेथ' का बंगला में अनुवाद किया। अब वह धीरे-धीरे कविता, कहानी आदि भी लिखने लगे।

सन् १८७७ में उन्होंने पहली बार इंग्लैंड की यात्रा की। वह पहले तो ब्राइटन स्कूल में भर्ती हुए, फिर उसे छोड़कर यूनिवर्सिटी कालेज, लन्दन में भर्ती हुए। इस शिक्षा से उन्हें संतोष नहीं हुआ और वह एक वर्ष बाद भारत आ गये।

रवीन्द्रनाथ बचपन मे ही प्रतिभाशाली थे। बौद्धिक प्रतिभा के साथ ही साथ आध्यात्मिक विचारों की एक गहरी धारा उनके भीतर प्रकाशित

हो रही थी। उन्हें प्रकाश किस प्रकार मिला, यह निस्संदेह, आश्चर्यपूर्ण है। उन्होंने स्वयं लिखा है—"सूर्य देवता सामने के वृक्षों से झांक रहे थे। मैं उनका स्वागत करने अपने निजी मकान के छज्जे पर दौड़ गया। वृक्षों पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। इस समय एकाएक मुझे दिव्य प्रकाश मिल गया। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु इस समय एक ही प्रतीत होती थी—सारा विश्व एक दिखायी देता था। सब चेतन जगत्—यह सारा जीवन—प्रकाश और प्रेम से परिपूर्ण दिखायी देने लगा। इस अपूर्व दृश्य का वर्णन मानवी शक्ति के परे है। सूर्य की क़िरणें हर्ष और सौंदर्य से उत्फुल्ल प्रतीत होने लगीं। प्रकृति का घूंघट हट गया। दूर से दूर, इस सिरे से उस सिरे तक, प्रकाश और सौंदर्य की असीमता ही दिखायी देती थी। इससे मुझमें इतना आनन्द आ गया कि उसने लगभग पीड़ा का रूप प्राप्त कर लिया था। पड़ोसी मानवी प्रेम से अभिभूत प्रतीत होने लगे। मैं सड़क के एक दीन भिखारी को भी बड़े प्रेम से देखता था और मेरा हृदय उसके प्रति सहानुभूति से भर जाता था। मैंने एक बच्चे को अपने साथी के गले में बांहें डालते हुए देखा और यह दृश्य मेरे हृदय में इतना चुभा कि आंखों में आंसू निकल पड़े।

"यह अन्तर्दृष्टि—यह प्रकाश जो कि समुद्र या पृथ्वी पर कभी नहीं था—निरन्तर मेरे साथ रही और अपना सारा जीवन आनन्द की अनुभूति में लगाने का मैंने विचार किया। मेरे बड़े भाई ने मुझे अपने साथ चलकर दार्जिलिंग के चमत्कारपूर्ण प्राकृतिक दृश्यों को देखने को कहा। मैं उनके साथ पहाड़ पर गया, किन्तु मुझे यह कहते हुए हंसी आती है कि मैं गलती पर था। सारा आनन्द खिसक गया। हर एक चीज पीछे रह गयी और दिन के प्रकाश के साथ लुप्त होती गयी। बजाय इसके कि और अधिक प्रकाश देखूं, सारा आनन्द मिट गया। उस समय मेरे आध्यात्मिक ध्येय में जो बाधा पड़ी वह मेरे जीवन का सबसे गहरा सबक है। इसका प्रयोजन यह है कि हमें अपने रास्ते से जीवन को शोध करने की आवश्यकता नहीं है। उसे ही हमारी खोज करनी चाहिए। इस बात की आवश्यकता है कि हम उनके मार्ग से उसका अनुभव करें। मनुष्यों से दूर—पहाड़ों में खोजने के बजाय गरीबों के बीच हमें उसका पता लगाना चाहिए।"

१५ वर्ष की अवस्था से पूर्व ही वे लिखने लगे थे। अपने प्रारम्भिक काल में ही वे अच्छी रचनाएं करने लगे थे। उत्तरोत्तर उनकी रचनाएं उनकी प्रतिभा का परिचय देने लगीं और जल्दी ही उनकी धाक बंगला साहित्य पर बैठ गयी।

९ दिसम्बर सन् १८९३ को मृणालिनी देवी के साथ उनका विवाह हुआ। वे साहित्यिक कार्यों में प्रवृत्त हुए और अपनी साहित्यिक योग्यता के कारण लोकप्रिय होने लगे। कुछ लोग उनको 'बंगाल के शैली' के नाम से पुकारने लगे। १८९१ में उनकी 'मानसी' नामक एक प्रौढ़ रचना प्रकाशित हुई। वृद्ध पिता ने रवीन्द्रनाथ को कलकत्ता छोड़कर गांव के शान्त वातावरण में रहने की सलाह दी। अतएव वह अपनी जमींदारी के स्यालदा नामक ग्राम में, जो गंगा के किनारे हैं, जाकर रहने लगे। यहां रवीन्द्रनाथ के जीवन के सबसे अधिक सुखी दिन बीते। वे कभी-कभी अपनी नाव में बैठकर गंगा के बीच के रेतीले मैदान में चले जाते, जो कहीं-कहीं किनारे से ३ मील दूर है। वे वहां अकेले ही प्रकृति से अपने हृदय का सम्बन्ध स्थापित करने में तल्लीन हो जाते थे। उन्होंने वहां बहुत ही सुन्दर रचनाएं कीं। किन्तु इस प्रकार एकांतप्रियता एवं कल्पना के लोक में विचरण करने के साथ ही वे गांव की वास्तविक परिस्थिति से उदासीन नहीं रहे। अपनी जायदाद के अच्छे प्रबन्ध की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया और ग्रामों की समस्याओं का भी अध्ययन किया। इस समय वे ऐसे अच्छे प्राकृतिक दृश्यों के बीच में थे जिनको वे अधिक चाहते थे और जिनका उन्होंने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। विस्तृत एवं शस्य-श्यामल मैदान, सुन्दर नहरें और पक्षियों का कलरव उनको बहुत आकर्षित करता था। प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर लेने में एवं अपनी प्रतिभा के विकास में यहां उन्हें पर्याप्त शान्ति और समय मिला।

यहां का समय सफलता एवं सुन्दर रचनाओं की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लगभग चार वर्षों तक उन्होंने निरन्तर एक-से-एक अच्छे निबन्ध, कहानियां और कविताएं ही नहीं लिखीं, किन्तु अच्छे नाटक भी लिखे। 'बलिदान' बंगला-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। 'चित्रांगदा' भी

अपने ढंग की एक बेजोड़ रचना है। उनके गीति-काव्यों की श्रेष्ठता भी अपनी चरम-सीमा पर पहुंचने लगी थी। उनका 'सोनारतरी' नामक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ है, जिसमें उनके रहस्यमय विचारों का अच्छा विकास दिखायी देता है। इसके दो वर्ष बाद 'चित्रा' और फिर 'उर्वशी' प्रकाशित हुई। ये रचनाएं विश्व-साहित्य में सौन्दर्य-पूजा की दृष्टि से बेजोड़ हैं।

रवीन्द्रनाथ का हृदय देश-प्रेम से परिपूर्ण था। वे विदेशी शोषण के विरोधी थे। काका कालेलकर के शब्दों में देशभक्ति उनका व्यसन नहीं, किन्तु स्वभाव था। उस समय देश में दो प्रकार के लोग थे। एक प्रकार के लोग मानते थे कि--"हम गिरे हुए हैं, इसलिए जो कुछ हमारा है, सब कूड़ा-कर्कट है, उसे साफ़ करके हमें अपने राजकर्त्ताओं का अनुकरण करना चाहिए।" उनकी संकीर्ण बुद्धि में यह नहीं आया कि अंधानुकरण ही मरण है। अंधानुकरण का जीवन कृत्रिम होता है, अपमानकारक है और अत्यन्त ही हास्यास्पद। इसके विपरीत दूसरा पक्ष कहता था--"अंग्रेज बुरे हैं। उनकी संस्कृति हेय है। हमारा सब कुछ बढ़िया है, हम लोग तो संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं। हमें दूसरों से क्या सीखना है?" किन्तु इन लोगों के भी ध्यान में नहीं आया कि यह वृत्ति भी उतनी ही कृत्रिम और खोखली है। रवीन्द्रनाथ इन दोनों का त्याग करने को कहते थे--"तुम अपने को पहचानो। अपना जीवन शुद्ध और समृद्ध करो। तपस्या से तुम्हारी शक्ति अपने आप बढ़ने लगेगी, फिर किसी की ताकत नहीं जो तुम्हारा अपमान करे।"

वे चाहते थे कि भारत के प्राचीन आदर्शों को फिर जाग्रत और जीवित करना चाहिए। उन्होंने आर्यों की सभ्यता तथा उपनिषदों पर व्याख्यान दिये और सिक्खों, राजपूतों तथा मरहठों की वीरता एवं आत्म-विश्वास की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस समय उनका सबसे बड़ा स्मृति-चिन्ह शान्तिनिकेतन है। इस विश्वविख्यात विद्यालय की स्थापना सन् १९०१ में हुई। हमारे प्राचीन आदर्शों के पुजारी होने के साथ-साथ रवीन्द्रनाथ पश्चिम की वर्तमान प्रगति से एकदम उदासीन नहीं थे। शान्तिनिकेतन में पश्चिम की वर्तमान

शिक्षा-प्रणाली को कुछ अंशों में ग्रहण भी किया गया। वे चाहते थे कि इस विद्यालय के द्वारा प्राचीन आदर्शों की प्राप्ति की जाय और भारतीय विद्यार्थी के मन और आत्मा का इतना विकास कर दिया जाय कि वह सौन्दर्य, प्रेम और ईश्वर की ओर उन्मुख हो सके। शान्तिनिकेतन एक आदर्श संस्था समझी जाने लगी और देश ही नहीं, विदेशों से भी विद्यार्थी आकर भरती होने लगे। इसी प्रकार विदेशों से अध्यापक भी शान्तिनिकेतन में आकर काम करने लगे। इनमें दीनबंधु एंड्रूज और पियर्सन काफी प्रसिद्ध अध्यापकों में से थे।

कविवर का गार्हस्थ्य जीवन काफी सुखी था। शिक्षाव्रती कवि जिस समय अपने आदर्श विद्यालय के संगठन में प्रवृत्त थे उस समय उनकी धर्मपत्नी उनके इस कार्य में बराबर सहयोग देती थीं। अपने हाथ से छात्रों के लिए जलपान तैयार करने का भार उन्होंने लिया था। छात्रों को अपने स्नेह से उन्होंने गढ़ना चाहा। विद्यालय को आरम्भ हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि कवि-पत्नी का देहान्त हो गया। कवि-संसार को भंग करके वह अकाल में ही चल बसीं। मृत्यु-शय्या पर कवि ने अपनी पत्नी की जैसी सेवा-शुश्रूषा की, उसकी छाप आज भी परिवार के लोगों पर ज्यों-की-त्यों अंकित है। पत्नी के असामयिक निधन से कवि को मर्मान्तक पीड़ा हुई।

कवि के जीवन का अब बड़ा ही दुःखमय अध्याय प्रारम्भ होता है। सन् १९०२ के नवम्बर मास में पत्नी का देहान्त तो हो ही गया था, दो वर्ष बाद ही उनकी दूसरी कन्या की भी मृत्यु हो गई। इसके बाद १९०५ में उनके वृद्ध पिता भी चल बसे। नियति का निर्दय प्रहार यहीं तक सीमित नहीं रहा। एक ही वर्ष बाद उनके बड़े पुत्र की भी मृत्यु हो गई। अपने इस पुत्र को वे बहुत प्यार करते थे। मृत्यु के निरन्तर प्रहारों के कारण कवि की आत्मा करुण क्रंदन कर उठी। 'स्मरण', 'खेवैया' और 'नौका डूबी' नामक रचनाएं इसी काल की हैं। इन रचनाओं में कवि के बड़े ही मार्मिक उद्गार हैं। इस शोक के बीच ही कवि को एक दूसरा दिव्य प्रकाश प्राप्त हुआ। तब निश्चित रूप से उन्होंने यह जान लिया कि मृत्यु अन्त नहीं जीवन की पूर्णता है।

इसके बाद कवि ने पश्चिम में जाना प्रारम्भ किया । पहले वे बीमारी की अवस्था में इंग्लैंड गये और वहां उनका एक बड़ा आपरेशन हुआ जो कि बिल्कुल सफल रहा । यही वह समय था जब कि उनकी 'गीतांजलि' नामक बंगला-कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित हुआ । अनुवाद स्वयं कवि ने किया था । इस छोटी-सी सुन्दर काव्य-पुस्तक ने उन्हें विश्व-विख्यात कर दिया । उन्होंने अमेरिका की यात्रा की और विश्व-विख्यात होकर १९१३ में भारत लौटे । भारत आने के कुछ ही सप्ताह बाद विश्व-साहित्य का सुप्रसिद्ध 'नोबल पुरस्कार' उन्हें मिला । सिर्फ एक ही कवि की साधना से भारतवर्ष की एक प्रांतीय भाषा विश्व-साहित्य की भाषा बन गयी । प्रतिकूल वातावरण एवं साधनहीनता के होते हुए भी अपने चारों ओर के असहयोग को लांघ जाने और उन्हें बदल देने में ही रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा की सिद्धि है । रवीन्द्रनाथ ने अपनी वीणा के स्वरों से निराश और विक्षुब्ध जाति में नवजीवन का संचार किया । साम्प्रदायिकता के स्थान पर राष्ट्रीयता को प्रतिष्ठित किया । उन्हीं के प्रयत्नों से नवजाग्रत बंगाली मानस स्वाधीनता के स्वप्न से व्याकुल और चंचल हो उठा । स्वधर्म-प्रतिष्ठा की साधना में रवीन्द्रनाथ कवि ही नहीं, पथ-प्रदर्शक भी हैं ।

इन्हीं वर्षों में, जबकि सारे विश्व में उनकी कीर्ति-कौमुदी फैल चुकी थी, कवि की अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएं प्रकाशित हुईं । उन्हें 'नाइट' की उपाधि प्रदान की गयी तथा अन्य कई प्रकार से देश में उनका सम्मान हुआ ।

उन्होंने राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के आदर्शों को मूर्त-रूप देने के लिए 'विश्व-भारती' नामक एक विश्व-संस्कृति की संस्था की स्थापना की और ग्राम-सुधार के लिए श्रीनिकेतन की स्थापना की जो कि ग्रामों के पुनर्निर्माण के लिए विश्व-भारती का एक विभाग है । सन् १९२० और '३० के बीच में उन्होंने बड़ी यात्राएं कीं, किन्तु उनका ध्यान सदैव विश्व-भारती की उन्नति में लगा रहा । नोबल-पुरस्कार से और पुस्तकों से जो कुछ उन्हें मिला, वह सब वे उसके लिए खर्च करते रहे । शनैः-शनैः वह एक विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो गया और उसका नाम सचमुच ही विश्व-भारती हो गया जो कि संसार-भर की संस्कृति का बोधक है ।

संसार के विभिन्न देशों के विद्यार्थी यहां कार्य एवं संस्कृति के बन्धुत्व में परस्पर मिल-जुलकर रहते हैं। यूरोप और एशिया के कतिपय बड़े-बड़े विद्वान् भी यहां आते हैं और यहां रह कर भारतीय कला, संगीत और संस्कृति का अध्ययन करते हैं। रवीन्द्र यहां साधारणतः एक अध्यापक और संस्थापक-सभापति के रूप में रहते थे। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति ही नहीं, अपना सारा जीवन इसे अर्पण कर दिया।

साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जहां कवि ने इतना किया, वहां समय-समय पर स्वदेश-प्रेम भी प्रदर्शित किया। बंग-भंग के समय उन्होंने बहुत काम किया। जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड से तो वह इतने दुःखी हुए कि उन्होंने अपनी 'सर' की उपाधि का परित्याग कर दिया। उनके अंग्रेज मित्र इससे असंतुष्ट होकर अलग हो गये, किन्तु उन्होंने इसकी बिल्कुल चिन्ता नहीं की। राजनीति में गांधीजी से कुछ मतभेद होते हुए भी वह उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। यही हाल गांधीजी का भी था। जब बंगाल में गांधी-विरोधी-आंदोलन आरम्भ हुआ तो उस समय उन्होंने उसका कड़ा विरोध किया।

उन्होंने वर्तमान अंग्रेजी शासन की उस नीति की सदैव निन्दा की है जिसके द्वारा भारतवासियों की स्वतंत्रता का अपहरण किया गया और करोड़ों व्यक्तियों को दरिद्रता और दीनता का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। वह साम्राज्यवाद के कड़े विरोधी थे, किन्तु उन्होंने साम्राज्यवाद का मुकाबला करने एवं स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए कभी हिंसात्मक उपायों का अवलम्बन करने की राय नहीं दी। सभ्यता और सांस्कृतिक उत्थान के लिए उन्होंने सदैव अंग्रेजों के साथ सहयोग करने की राय दी। वृद्धावस्था के कारण अन्तिम दिनों में उनका स्वास्थ्य कुछ खराब रहने लगा था, किन्तु उनकी आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास नहीं हुआ। समय-समय पर जब आवश्यकता हुई तब उन्होंने बर्बरता, पशुता, जुल्म और हत्याओं के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की और करारे जवाब दिये।

कवीन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे केवल कवि, उपन्यासकार, नाटककार एवं कहानी-लेखक ही नहीं थे, किन्तु एक बड़े संगीतज्ञ, चित्र-कार, तत्त्वज्ञानी, पत्रकार, अध्यापक, वक्ता एवं अभिनय की कला में

प्रवीण थे। संस्कृत के काव्यों एवं मध्यकाल के वैष्णव साहित्य से उन्हें बहुत प्रेरणा मिली थी। उपर्युक्त विषयों पर उनका असाधारण अधिकार था। ज्ञान की तो वे मानो सजीव मूर्ति थे। अपनी असाधारण प्रतिभा और भावोद्वेग से उन्होंने विश्व-मानव की वन्दना की। देश और जाति के संकीर्ण बन्धनों को त्यागकर समस्त मानवता को अपने हृदय में धारण किया। पीड़ित मानव की वेदना को भाषा प्रदान की, उसकी आशा को उन्होंने छन्दों में रूपान्तरित किया और उसके आनन्द को संगीत की सैकड़ों धाराओं में बहाया। मानव-महत्त्व के इस पुजारी ने देश-विदेशों में भ्रमण करके मानवता को दानवी-शक्ति से छुटकारा दिलाने की अमर वाणी सुनाई। नगर छोड़कर देहात की एकांत गोद में साधना करते हुए दीर्घ जीवन व्यतीत करके ८ अगस्त, १९४१ को गुरु पूर्णिमा के दिन अस्सी वर्ष की अवस्था में अपने जोड़ासांको के राजभवन में शिष्य-प्रशिष्यों के बीच उन्होंने शरीर-त्याग किया। उन्हें खोकर विश्व-मानव दरिद्र हो गया।

श्री किशोरलाल मशरूवाला के शब्दों में, "व्यास, बाल्मीकि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर आदि वैदिक ऋषि सब कालों में वर्तमान पुरुष हो गए हैं। अगर लिखित इतिहास का लोप हो जाय तो श्री रवीन्द्र की भी गणना उन्हीं के समकालीनों में होगी।"

गांधीजी कहते हैं—"गुरुदेव हिन्दुस्तान की सेवा की मार्फत सारे जगत् की सेवा करना चाहते थे और सेवा करते-करते चले गये। उनकी आत्मा तो अमर है जैसे हम सबकी है। उनकी प्रवृत्तियां व्यापक थीं और प्रायः सभी ऐसी पारमार्थिक थीं कि उनकी मार्फत वह अमर रहेंगे। शान्तिनिकेतन, श्रीनिकेतन, विश्वभारती—ये सब एक ही कृति के नाम हैं। वे गुरुदेव का प्राण थीं। उन्हीं के लिए दीनबन्धु गये व बाद में गुरुदेव।"

७

मैथिलीशरण गुप्त

डा० कैलाशपति तथा सम्पादक

गांधीयुग ने जिस प्रकार अनेक राजनीतिक नेताओं का निर्माण किया, उसी प्रकार महात्मा गांधी के व्यक्तित्व से अनेक साहित्यकार भी आविर्भूत हुए। जो भी प्रतिभावान साहित्यकार महात्मा गांधी के सम्पर्क में आया वह महान् बन गया। मैथिलीशरण गुप्त भी गांधीजी के निकट सम्पर्क में आए। नए भारत के प्रतीक गांधी के आचार-विचार से प्रभावित होकर मैथिलीशरण गुप्त ग्रामीण कवि से राष्ट्रकवि बन गए। उनका जीवनचरित्र छात्रों को प्रेरणा प्रदान करने वाला सिद्ध हुआ। मैथिलीशरण गुप्त मन, वचन, कर्म से भारतीयता की पूर्ण प्रतिमा थे—सरल, विनम्र, शरीर में अद्भुत महान् आत्मा। उनके व्यक्तित्व के दो रूप हमें मिलते हैं—पूर्वरूप, जिसमें श्मश्रुयुक्त मुख-मण्डल है, भारतीय कान्तिपूर्ण मनीषी का प्रतीक है और उत्तर-रूप श्मश्रुविहीन है जो किसी भारतीय संत अथवा परमहंस का प्रतीक है। इन्हीं चारों विशेषताओं का योग, उनके काव्य और व्यक्तित्व के पूर्ण लक्षण बतला देता है। इन सभी विशेषताओं को यदि एक नाम दिया जाये तो हम कह सकते हैं कि गुप्तजी का व्यक्तित्व भारत का राष्ट्रीय व्यक्तित्व था। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक वे राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत बने रहे। इसी कारण महात्मा गांधी ने उन्हें राष्ट्रकवि के सम्मान से विभूषित किया था।

वे प्रकाश-पुंज से जगमग आकाश-गंगा थे। उन्होंने भारतवर्ष को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नये-नये ज्ञान और संदेश से भरपूर किया। सत्यं, शिवं और सुन्दरं, तीनों की आराधना पर आपने बल दिया और इसीलिए अपनी साहित्य-रचना में उन्होंने ऐसे पात्रों का चयन किया जिनसे भारतवासियों को इन तीनों उद्देश्यों की पूर्ति में प्रचुर सहायता मिल सके।

वे भारतीय सद्गृहस्थ-धर्म के समर्थक थे और जीवन में सन्तुलन रखने
आग्रह करने वाले थे। सन्तुलन सद्गृहस्थ के जीवन की सबसे बड़ी आवश्
कता होती है, इसीलिए उसके प्रति उनका सदैव आकर्षण रहा है। स
महान् भारतीय कवियों की तरह उन्होंने प्रेम, शौर्य, भक्ति, वैराग्य,
तथा त्याग में संतुलन का आदर्श प्रस्तुत किया है।

ऐसे महान् कवि का आविर्भाव झांसी नगर से लगभग १२ मील
स्थित एक छोटे से कस्बे चिरगांव में हुआ था। उनका जन्मस्थान हे
के नाते चिरगांव आज एक तीर्थ-स्थान में बदल गया है। इस कस्बे
रामाचरण जी के घर में ३ अगस्त, सन् १८८६ को मैथिलीशरण ने ज
लिया था। आपका प्रारम्भिक नाम मैथिलाधिपनन्दिनीशरण था, प
सम्बोधन की सुविधा के आधार पर पहले यह मिथिलाशरण और वि
बाद में मैथिलीशरण बन गया। मैथिलीशरण ने अपने माता-पिता
आदर्श भारतीय संस्कारों को यथावत् ग्रहण किया था और उन्हें आजी
बदलती हुई परिस्थितियों में भी ठेस नहीं लगने दी। पिता से उन्
धार्मिकता तथा उदारता और माता से विनम्रता तथा संतोष के
ग्रहण किए थे। मैथिलीशरण जी का प्रारम्भिक जीवन धनाढ्य परि
में बहुत सुखपूर्वक बीता था। पुत्र होते हुए भी उन्होंने मोतियों के झु
सोने के गहने तथा चांदी के कड़े-तोड़े तक पहने थे। वस्त्र-रूप में गोटे
सुसज्जित अंगरखे तथा अन्य बहुमूल्य कपड़े धारण किया करते थे। अ
उनका बाल्य-काल बड़ा ही सुखमय बीता। अपने बड़े भाई के साथ गुप्त
प्रारम्भिक पाठशाला में पढ़ने जाते थे, परन्तु उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति
हुए अध्ययन के वृत्त में बंधना नहीं चाहती थी। अपने वर्ग के साथियों
साथ पतंग उड़ाना और चकरी फिराना उन्हें अध्ययन की अपेक्षा अ
अच्छा लगता था। अतः इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अत्यन्त सामान्य
से हुई।

मैथिलीशरणजी का परिवार वैष्णव धर्म के संस्कारों से सर्वथा
था। इसलिए बचपन से ही मैथिलीशरणजी के मस्तिष्क पर इन संस्क
का व्यापक प्रभाव पड़ा था और धीरे-धीरे उनकी जड़ें गहरी पैठती
थीं। पिता रामाचरण उन्हें एक के बाद एक धर्म-कथाएं सुनाया करते

जिन्हें मैथिलीशरण केवल चाव से ही नहीं सुनते थे वरन् उनमें एक अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति भी करते थे। सेठ रामाचरणजी अनन्य राम-भक्त थे। अतः राम के जीवन की कथाएं अधिकांश मात्रा में सुनाया करते थे। इसीलिए बड़े होकर मैथिलीशरण भी यदि कहें, "राम, तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है"—तो आश्चर्य की क्या बात है? राम के साथ ही साथ गुप्तजी कृष्ण को भी भारत के महापुरुषों में शीर्षस्थ स्थान देते थे और भक्तिपूर्वक उनके जीवन का भी उन्होंने अध्ययन किया था। 'यशोधरा' में वे गौतम बुद्ध का भी चरित्रांकन करते पाये जाते हैं,परन्तु उन्होंने गौतम बुद्ध को भी राम का भक्त बनाते हुए उनसे "ओ क्षणभंगुर भव राम-राम" कहलाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मैथिलीशरण वैष्णव धर्म के अनुयायी भक्त कवि हैं और इसी के माध्यम से उन्होंने संसार को भारतीयता का संदेश दिया है।

मैथिलीशरण जी का विवाह-संस्कार नौ वर्ष की अवस्था में ही दतिया के बहुत बड़े सेठ की कन्या से हो गया। परन्तु आठ वर्ष बाद सन् १९०३ में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया और नवजात कन्या भी अधिक समय तक जीवित न रह सकी। इसके दो मास बाद ही उस क्षेत्र में भयंकर प्लेग का प्रकोप हुआ। उनके पिताजी इस रोग के शिकार हो गये। ये तीन आघात तो लगे ही थे, सन् १९०४ में, लगभग १ वर्ष बाद ही, उनकी मां का साया भी उनसे हट गया। इस आकस्मिकता के साथ घटने वाली इन गम्भीर घटनाओं ने, माता-पिता, पत्नी, पुत्री के वियोग ने उनके कोमल हृदय को तीव्र आघात पहुंचाया। बस, सारी चंचलता गम्भीरता में परिणत हो गयी और उनके अन्तर्मन में कवि-हृदय पल्लवित होने लगा। इस कवि-हृदय को मुंशी अजमेरीजी से बहुत प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ जो एक वैष्णव मुसलमान के पुत्र थे। दूसरे, कवित्व उनको बिरासत में भी मिला था। उनके पिताजी भी अच्छी कविता करते थे। उनकी एक कविता में 'कनकलता' के स्थान पर 'हेमलता' का संशोधन करके अपनी कवित्व-शक्ति का आपने परिचय दिया था। सबसे पहले आपकी रचना कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'वैश्योपकारक' नामक पत्र में छपी थी।

उन दिनों 'सरस्वती' नामक पत्र का सम्पादन आचार्य महावीरप्रसाद

द्विवेदी करते थे। यह मैथिलीशरणजी की बड़ी प्रिय पत्रिका थी। उनके अन्तर्मन में यह एक इच्छा जागरूक होने लगी थी कि कितना अच्छा होता यदि उनकी कविता भी इस पत्रिका में छप सकती। पहले 'हेमन्त' नामक एक कविता लिखकर द्विवेदीजी के पास भेजी भी, जो बड़ी अपरिपक्व थी। इसे संशोधित करके द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित किया। नयी अभिव्यक्ति को देखकर गुप्तजी को अपनी हीनता पर लज्जा आई और द्विवेदीजी की उदारता के प्रति वे श्रद्धा से नतमस्तक हो गये। तभी से उन्होंने उन्हें अपना गुरु मान लिया तथा द्विवेदीजी से उनका अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया। उनकी प्रेरणा और हार्दिक प्रोत्साहन ने गुप्तजी के कवित्व को अवाध गति दी और सन् १९१० में उनकी जो काव्यधारा 'रंग में भंग' से प्रारम्भ हुई, वह जीवन के ७१वें वर्ष तक प्रवाहित रही। इस कालावधि में उन्होंने 'जयद्रथ-वध', 'भारत-भारती', 'साकेत', 'यशोधरा', 'जयभारत', 'विष्णु-प्रिया' जैसे विशिष्ट ग्रन्थ मां भारती को अर्पित किये। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी उन्होंने प्रकाशित किये थे जैसे 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास', 'कृषक-कथा', 'विकट भट', 'वनवैभव', 'वैतालिक', 'मंगल-घट' और 'झंकार' इत्यादि। 'भारत-भारती' वह ग्रन्थ है जिसने सन् १९१४ में अंग्रेजी शासन की कठोरता से प्राप्त युग की मूक भावना को वाणी दी, जिसने राष्ट्रीयता का, स्वदेश-प्रेम के जागरण का शंखनाद किया। गांधीजी के स्वराज आन्दोलन में जिसने अपूर्व सहायता पहुंचाई। थोड़े ही समय में इसने जो लोकप्रियता प्राप्त की वह बहुत ही कल्पनातीत थी। इसी प्रकार 'साकेत', 'यशोधरा' और 'जयभारत' ने भी साहित्य-जगत् में बहुमान अर्जित किये और गुप्तजी के व्यक्तित्व को भारतीय धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया।

उनका कवि-जीवन जितना ही सफलता के सोपानों पर चढ़ता जा रहा था, उनका पारिवारिक जीवन विषमताओं तथा विफलताओं में उलझता जा रहा था। उनके दाम्पत्य जीवन में सुख-चैन प्राप्त नहीं हो रहा था। प्रथम पत्नी के देहान्त के उपरान्त उनका दूसरा विवाह हो गया था। दस वर्षों के उपरान्त इस पत्नी से यदि एक शिशु उत्पन्न भी हुआ तो केवल दो-तीन दिन तक ही जीवित रहा और उसकी जननी भी

रुग्णता से मुक्ति माने के लिए गुप्तजी का साथ छोड़ गयी। तीन-चार वर्ष बाद ३१ वर्ष की अवस्था में उन्हें न चाहते हुए भी तीसरा विवाह करना पड़ा और ५२वें वर्ष में जाकर कहीं उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई, और तब कहीं उनके पारिवारिक जीवन में प्रकाश-किरण का उदय हुआ।

गुप्तजी राष्ट्रीय पुनरुत्थान के गायक और उसके मार्ग-द्रष्टा थे। मन के अंधकार से आवृत द्वारों को खोलकर उन्होंने स्वातन्त्र्य-भावना के जागरण, स्वातन्त्र्य संग्रामविजय एवं नवनिर्माण के गीत गाये। 'भारत-भारती' इस आन्दोलन का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। प्रभाती गाते हुए मानो उन्होंने कहा था :—

> **"नयी पौ फटी, रात कटी,**
> **तम की अन्तर-पटी हटी।**
> **उठो, उठो, बोलो, बोलो!**
> **खोलो, मनोद्वार खोलो!"**

राष्ट्र जगा और आत्मदैन्य को छोड़ कर वह पुरुषार्थ के मार्ग पर अग्रगामी हो गया और लगभग अर्द्ध-शताब्दी तक इसी प्रकार राष्ट्र के पुनरुत्थान के हर मोड़, हर पड़ाव पर अपनी वाणी से उन्होंने नया सन्देश दिया है, नया मार्ग दिखाया है। राम, कृष्ण और गौतम की आराधना भी राष्ट्रीयता की ही आराधना है। इन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं के पोषण और संवर्धन के लिए सन् १९५२ में गुप्तजी राज्य-सभा के सम्मानित सदस्य चुने गये और तब से लेकर लगातार १२ वर्षों तक आपने इस पद पर अधिष्ठित होकर भारतवर्ष की राष्ट्रीय सेवा की है। यद्यपि उन्होंने कभी सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लिया फिर भी राष्ट्रीय नेताओं के सम्पर्क के कारण, राष्ट्रीय भावनाओं के जागरण के कारण, उनकी 'भारत-भारती' पर अंग्रेजों ने प्रतिबन्ध लगा दिया था और उन्हें १९४१ में जेल की यात्रा भी करनी पड़ी थी। इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में भी आपका पदार्पण हो गया और तब गुप्तजी ने पगड़ी के स्थान पर गांधी-टोपी धारण करना स्वीकार किया था। जीवन के अन्तिम चरण तक वे राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय

विचारों से ओतप्रोत रहे। सन् १९६२ में जब चीन ने भारत की सीमाओं पर आक्रमण कर दिया तो उनकी चिन्तित मुद्रा को देखकर प्रायः यही लगा करता था कि यह राष्ट्र का सर्वसामान्य संकट नहीं, वरन् उनका वैयक्तिक संकट है। रह-रहकर वे क्षुब्ध हो जाया करते थे और कहा करते थे—"हिन्दुस्तान का मस्तक नीचा हो गया।" चारों ओर व्यक्तियों से घिरे रहने पर भी मानो निरपेक्ष, मौन, चिन्ताकुल बैठे रहते, या फिर संसद् के अपने सदस्य-मित्रों के साथ उत्साहपूर्ण विचार-विनिमय में भाग लेते थे। परिवार के लोगों को यह आशंका होने लगी थी कि कहीं उनका हृदय-रोग फिर से न बढ़ जाये। इस प्रकार उनकी राष्ट्रीय भावना अन्तिम दिनों तक उनके मन में पल्लवित रही है।

गुप्तजी का मानवतावाद न केवल उनके साहित्य की विशेषता थी वरन् उनके व्यक्तित्व का भी एक गुण था। वे इतने सरल और स्नेहमय थे कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह परिचित हो या अपरिचित, स्त्री हो या पुरुष, भारतीय हो या अभारतीय, उनके निकट पहुंचकर मानो सौजन्य के सरोवर में स्नान करने लगता था। राग और द्वेष से परे उनका व्यक्तित्व आत्मीयता से सबको अभिभूत कर लेता था और उनकी वाणी से सदैव यही लगता था मानो वे व्यक्ति को मंगलमय आशीर्वाद दे रहे हैं। यही मानवतावाद उनके साहित्य के पृष्ठों में भी अंकित हुआ है। राम और कृष्ण तथा गौतम बुद्ध को उन्होंने सच्चे मानव के रूप में चित्रित किया है और उनका एक मानव के दृष्टिकोण से ही चरित्रांकन किया है। मानव-सुलभ सूक्ष्मताओं के आधार पर मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क का चित्रण किया है।

वे राजभाषा हिन्दी के सशक्त प्रहरी थे। गुप्तजी का जन्म तो मानो हिन्दी के विकास के लिए ही हुआ था। इस बात का प्रमाण इससे मिल जाता है कि उन्होंने आजीवन केवल हिन्दी की ही सेवा की, अन्य किसी भाषा की नहीं। चालीस से अधिक मौलिक ग्रन्थों की रचना और आधे दर्जन से अधिक हिन्दी भाषा में विभिन्न भाषाओं से अनुवाद देकर वे हिन्दी भाषा और साहित्य को सुदृढ़ बना गए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को सुधारा और सुथरा रूप देने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। उसे काव्य की भाषा के अनुरूप बनाया और सजाया-संवारा

भी। यही नहीं, उसे इतना अधिक समर्थ बना दिया कि वह अत्यन्त सूक्ष्म मनोभावों और जटिल क्रिया-कलापों को प्रकट करने में समर्थ हो सके। राज्य-सभा में रहते हुए उन्होंने हिन्दी के विकास के लिए अथक परिश्रम किया। अपने विचारों को विशिष्ट अवसरों पर वे कविता-बद्ध करके बोला करते थे। चाहे वह राजभाषा का विधेयक हो, चाहे वह बजट हो, हर समय उनके कवितामय विचार को सुनने के लिए सदन के भीतर और बाहर लोग आतुर रहा करते थे। उनकी सदैव यही इच्छा रही कि हिन्दी को यथाशीघ्र राजभाषा के पद पर अधिष्ठित कर दिया जाये। हिन्दी के प्रति यदि कोई विरोधी नीति अपनाई जाती, तो उन्हें बहुत दुःख हुआ करता था और इसे वे अपनी वैयक्तिक हानि के रूप में अनुभव किया करते थे। गुप्तजी को वैसे क्रुद्ध रूप में देखना असम्भव ही था। परन्तु हिन्दी का जब कोई विरोध करता था तो उनका आक्रोश अन्तिम सीमा छू लेता था और उस समय वे किसी की भी परवाह नहीं करते थे। उनके स्नेहमय रूप को रौद्र की मूर्ति बनते हुए देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था।

गुप्तजी ने अपने काव्य में यद्यपि अतीत के इतिहास के महापुरुषों को चरित-नायक बनाया है, फिर भी उन्होंने युग-समस्याओं का भी उचित ढंग से समावेश किया है और अपने ढंग से उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। इन समस्याओं में प्रमुख रूप से नास्तिकता अथवा ईश्वर-सत्ता में अविश्वास एवं सन्देह की समस्या, देश में एक और केवल एक राज्य के संस्थापन की समस्या, सामाजिक और वैयक्तिक विकास के लिए अनुशासनहीनता की समस्या आदि हैं। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न पात्रों के माध्यम से उन्होंने इन समकालीन प्रश्नों की ओर संकेत किया है और उनकी ओर समाज तथा नेताओं का ध्यान आकृष्ट किया है। जन-साधारण के साथ-साथ सामाजिक विकास के लिए इन समस्याओं की जानकारी और उनको दूर करने के लिए समाधानों तथा प्रयत्नों की बहुत आवश्यकता थी। गुप्तजी के संदेशों और वैचारिक योगदानों में उनके समाधानों का महत्त्व अवर्णनीय है।

भारतीय नारी के उत्थान के लिए भी गुप्तजी ने सक्रिय कदम उठाया था। भारतीय समाज में नारी का स्थान बहुत निम्न हो गया था। वह

चिर-उपेक्षिता थी। महात्मा गांधी के विचारों के अनुकूल ही गुप्तजी की भी यही धारणा थी कि जब तक भारत में नारी-जागरण नहीं होता तब तक स्वतन्त्रता के संग्राम में विजय नहीं प्राप्त हो सकेगी। अतः नारी को सम्मान दिलाने के लिए उन्होंने उपेक्षित परन्तु महत्त्वपूर्ण नारी-चरित्रों का अंकन किया और उनके त्याग, तपस्या तथा बलिदान का निरूपण करके उनके गुणों को जनता के समक्ष रखा। इसके लिए उन्होंने तीन पात्रों को प्रमुख रूप में चुना—उर्मिला, यशोधरा और विष्णुप्रिया। इन सब नारियों ने उपेक्षिता होकर भी भारतीय धर्म-मर्यादा का पालन किया था इसलिए भारतीय ललनाओं में धैर्य और सहनशीलता आदि के गुण सीमा से परे हैं। वे हमारी आदर्श नायिकाएं हैं। अतः, उन्हें उचित सम्मान और समाज में उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए, ऐसी राष्ट्रकवि की मान्यता है।

मैथिलीशरणजी ने राष्ट्र की सेवा तथा सारे संसार की सेवा का व्रत लिया था। वे जो कुछ करते थे, व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए नहीं, वरन् त्रिभुवन के कल्याण के लिए, मंगल के लिए। उनकी स्पष्ट धारणा थी:

"न तन-सेवा, न मन-सेवा,
न जीवन और न धन-सेवा,
मुझे है इष्ट जन-सेवा,
सदा सच्ची भुवन-सेवा !'

वे एक विशिष्ट संदेश लेकर इस पृथ्वी पर आये थे। उनका काम स्वर्ग और अपवर्ग की प्राप्ति करना नहीं था, वरन् वे इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए आये थे, प्रेम से, सेवा से, लोकोपकार से, विश्व-बन्धुत्व से। उन्होंने राम के माध्यम से अपनी बात इस प्रकार कहलवायी है :

"संदेश यहां, मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

८

जगदीशचन्द्र बसु

डा० विमलकुमार जैन

पराधीन होते हुए भी जिन महानुभावों के कारण भारत ने विश्व में अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त की, उनमें विज्ञानाचार्य श्री जगदीशचन्द्र बसु का प्रथम स्थान है। उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण आविष्कारों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि केवल दर्शन, काव्य और अध्यात्म ही नहीं, वैज्ञानिक क्षेत्र में भी भारत की प्रतिभा इंग्लैंड, जर्मनी, अमेरिका आदि उन्नत देशों की बराबरी कर सकती है।

जन्म और शिक्षण—भारत के इस महान् वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु का जन्म नवम्बर १८५८ को बंगाल के ढाका जिले के विक्रमपुर कस्बे के निकट राठीखाल नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता श्री भगवानचन्द्र बसु उस समय फरीदपुर जिले में डिप्टी कलेक्टर थे। वे बड़े साहसी, दृढ़-संकल्प तथा उदार-हृदय थे। उनकी माता स्वभावतः श्रद्धालु तथा प्राचीन संस्कृति और मर्यादाओं में रुचि रखती थी। उनके पिता श्री भगवानचन्द्र को उद्योग-धन्धों से विशेष प्रेम था और देशी उद्योग-धन्धों को स्थापित करने के प्रयत्न में अपना सारा धन गंवा बैठे थे। बालक जगदीश को पिता की इन प्रवृत्तियों से विशेष स्फूर्ति और प्रेरणा मिली।

बालक जगदीशचन्द्र बसु को प्रारम्भ में एक ग्राम की पाठशाला में भेजा गया, वहां वे जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों को देखकर उनमें रस लिया करते थे और दूसरी ओर वे ग्राम के देहाती जीवन में भी रस लेते थे। यद्यपि इनके पिता डिप्टी कलेक्टर थे, फिर भी उन्होंने उन्हें एक ग्राम की पाठशाला में भेजना पसन्द किया। इस सम्बन्ध में श्री जगदीश चन्द्र बसु स्वयं कहते हैं—"मुझे देहाती पाठशाला में इसलिए भेजा गया कि मैं अपनी मातृ-भाषा सीखूं, देश के विचारों का अध्ययन करूं और

अपने देश के साहित्य द्वारा राष्ट्रीय सभ्यता और आदर्शों का पाठ पढ़ूं। ग्रामीण बच्चों के साथ रहकर मैंने सच्ची मनुष्यता का पाठ सीखा और यहीं मुझे प्रकृति का प्रेम भी प्राप्त हुआ।"

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने पर पिता ने श्री जगदीशचन्द्र को कलकत्ता भेज दिया। वहां मैट्रिक परीक्षा पास करने के बाद बी० ए० की परीक्षा भी पास कर डाली। इसी कॉलेज में उनको एक अत्यन्त मनोविज्ञान कुशल अध्यापक के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। वे विज्ञान के अध्यापक थे और उन्होंने बालक की प्रवृत्ति और प्रकृति को अच्छी तरह समझ लिया था। उन्हें यह विश्वास हो गया कि यदि इस बालक को विज्ञान के अध्ययन करने का अवसर मिले तो भविष्य में यह महान् वैज्ञानिक बनेगा। इस अध्यापक का नाम प्रो० लाफे था। उन्होंने विद्यार्थी की विज्ञान में रुचि को और भी विकसित किया।

इंग्लैंड में शिक्षण—उन दिनों अधिकांश सम्पन्न भारतीय अपने बालकों को 'इण्डियन सिविल सर्विस' की परीक्षा देने के लिए इंग्लैंड भेजा करते थे। श्री भगवानचन्द्र बसु ने भी अपने पुत्र को इंग्लैंड भेजा। परन्तु अंग्रेज शासकों द्वारा भारतीयों से दुर्व्यवहार देखकर उन्होंने मेडिकल कॉलेज में भर्ती होने की आज्ञा अपने पुत्र को दे दी ताकि वह स्वतन्त्र रूप से अपना जीवन व्यतीत कर सके। वहां की व्ययसाध्य पढ़ाई के लिए उनकी माता को अपने आभूषण बेच देने पड़े। पिता की आज्ञानुसार वे चीर-फाड़ और डॉक्टरी सीखने लगे किन्तु इस काम में उनका दिल न लगा। सम्भवतः भगवान् चीर-फाड़ की अपेक्षा उनसे कोई ऊंचा काम लेना चाहता था। मेडिकल कालेज में, उनका स्वास्थ्य भी कुछ बिगड़ गया था, इसलिए उन्होंने उस कॉलेज को छोड़ दिया और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में विज्ञान पढ़ने के लिए भर्ती हो गये।

सन् १८८४ में उन्होंने रसायन तथा वनस्पति विज्ञान में बी० ए० की परीक्षा पास की तथा अगले वर्ष लन्दन विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० पास की। इस शिक्षण-काल में इंग्लैंड के बहुत प्रसिद्ध विद्वानों के निकट सम्पर्क में आये और उनसे बहुत कुछ सीखने का उन्हें अवसर मिला।

नये-नये परीक्षण करने और किन्हीं नये नियमों की खोज करने में रस लेना इन अध्यापकों के सम्पर्क से ही उन्होंने सीखा।

अंग्रेज सरकार से प्रथम संघर्ष—१८८५ ई० में वे बी० एस-सी० की डिग्री लेकर भारत लौटे। यहां आते ही उन्हें कलकत्ते के प्रेजीडेंसी कॉलेज में प्रोफेसर का कार्य मिल गया। जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते ही उन्हें ब्रिटिश सरकार से सीधी टक्कर लेनी पड़ी। उन दिनों सरकार भारतीय अध्यापकों की अपेक्षा यूरोपीय अध्यापकों को अधिक वेतन देती थी। जगदीशचन्द्र बसु योग्यता में उनसे कोई कम नहीं थे, फिर कम वेतन क्यों लें, यह उनकी समझ में नहीं आया। जगदीशचन्द्र ने इसमें भारतीयता का अपमान समझा और विरोधस्वरूप लगातार तीन वर्ष तक अपने वेतन का चैक लौटाते रहे। अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा और यूरोपीय अध्यापकों के समान प्रारम्भ से ही उन्हें वेतन दिया जाने लगा। वस्तुतः यह श्री जगदीशचन्द्र बसु की योग्यता और आत्माभिमान की प्रथम विजय थी, जिसने उनके हृदय में अपने देश के प्रति और भी अनुराग उत्पन्न कर दिया। १८८६ ई० में ही उनका विवाह हो गया था। इधर वेतन न लेने के कारण और गृहस्थ की जिम्मेदारी बढ़ जाने के कारण उन्हें भीषण आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ा। कहते हैं कि उन्हें कलकत्ते में मकान लेना व्ययसाध्य प्रतीत हुआ इसलिए कुछ समय तक प्रतिदिन समीपवर्ती गांव से वे नाव पर कलकत्ता आते। बहुत बार उनकी पत्नी को भी नाव की देख-रेख के लिए साथ आना पड़ता। उन्होंने यह कठिनाई स्वीकार की किन्तु सफलता प्राप्त होने तक सरकार से संघर्ष करते रहे।

नये-नये प्रयोग—प्रेजीडेंसी कॉलेज में एक ओर जगदीशचन्द्र बसु अध्यापन का काम करते, दूसरी ओर वे विज्ञान के नये-नये प्रयोग करते। कॉलेज की प्रयोगशाला का प्रबन्ध अच्छा नहीं था और न इसमें सब प्रकार के साधन थे, इसलिए अपने काम के योग्य एक छोटी-सी प्रयोगशाला उन्होंने अपने घर पर ही बना डाली। इन दिनों संसार के वैज्ञानिकों का ध्यान जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक हर्ट्ज की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो चुका था। स्वभावतः जगदीशचन्द्र बसु भी

इनसे उदासीन न रह सके। उन्होंने भी बहुत लगन के साथ विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के सम्बन्ध में अपने परीक्षण आरम्भ किये और अपने अध्ययन तथा अन्वेषण के परिणामस्वरूप एक विद्वत्तापूर्ण लेखमाला भी विज्ञान के पत्रों में निकाली। विद्युत् किरण के ध्रुवीकरण पर उनका पहला लेख बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के प्रमुख पत्र में प्रकाशित हुआ। विद्युत् तरंगों के गुण नामक लेखमाला ने उनके नये आविष्कारों की ओर संसार के वैज्ञानिकों का ध्यान विशेष रूप से खींचा।

बेतार का तार—इन्हीं दिनों अमेरिका और इटली के वैज्ञानिक बिना तार के संदेश देने के नये-नये परीक्षण कर रहे थे। यदि उन दिनों भारत स्वतन्त्र होता तो बेतार के तार भेजने का श्रेय भारत के इस महान् वैज्ञानिक को मिलता, परन्तु न भारत स्वतन्त्र था और न भारत के पास अपने परीक्षण दिखाने के लिए विशेष साधन ही उपलब्ध थे। इटली के वैज्ञानिक मारकोनी से भी पहले वसु ने ही यह सिद्ध करके दिखा दिया था कि तारों के बिना आकाश में तार के संकेत भेजे जा सकते हैं। उन्होंने १८९५ ई० में बिना तार के संदेश भेजने का परीक्षण बंगाल के तत्कालीन गवर्नर को सफलतापूर्वक दिखा भी दिया। उन्होंने बिना तार के ही दूर पड़े हुए बोझ को हिला दिया, घण्टी को बजाकर एक बन्द कमरे में रखे हुए पटाखे को तड़ाक से फोड़ दिया। इसी वर्ष इंग्लैंड जाकर भी उन्होंने अपने परीक्षण करके वैज्ञानिकों को चकित कर दिया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि विश्व के वैज्ञानिक वसु को बेतार के तार का श्रेय देते। किन्तु वे उस भारत में उत्पन्न हुए थे, जो उस समय अंग्रेजों के अधीन था। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने उनके इस क्रांतिकारी परीक्षण की ओर से आंखें मूंद लीं। उनके पास अपनी कोई विस्तृत प्रयोगशाला भी न थी, जहां उन्हें दुनिया के सम्मानित पुरुषों के सामने अपने परीक्षण दिखाने का अवसर मिलता। भारत सरकार को इसकी चिन्ता नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि जगदीशचन्द्र वसु विज्ञान-क्षेत्र में इतना क्रान्तिकारी आविष्कार करके दिखाने से वंचित रह गए और उसके कुछ समय पश्चात् इटली के मारकोनी ने यह आविष्कार करके अपने और अपने देश के लिए यश प्राप्त कर लिया।

वनस्पति व जड़ जगत् में अनुभव-शक्ति—जिस आविष्कार ने श्री

जगदीशचन्द्र बसु का नाम प्रसिद्ध कर दिया, वह यह था कि वनस्पति जगत् में भी प्राणी जगत् की भांति अनुभव करने और सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति होती है। वह केवल जड़ पदार्थ नहीं है। केवल वनस्पति जगत् ही नहीं, जड़ जगत् में भी अनुभव करने की शक्ति है। इन दोनों प्रकार के सफल परीक्षणों ने श्री जगदीशचन्द्र बसु की कीर्ति में चार चांद लगा दिये। 'आविष्कारक और आविष्कार' के लेखक श्री बसु के इन परीक्षणों के विषय में लिखते हैं :—

"जिन दिनों बसु बेतार की तरंगों को ग्रहण करने वाला अच्छा धातु-यंत्र बनाने के प्रयत्न कर रहे थे, उन्होंने देखा कि कुछ धातुओं में बराबर विद्युत् तरंगों के प्रभाव से थकावट-सी उत्पन्न हो जाती है, किन्तु कुछ समय तक आराम कर लेने के बाद वे फिर अपनी पूर्व-अवस्था को प्राप्त कर लेती हैं। उन्होंने बार-बार के परीक्षणों से यह भी प्रतीत किया कि जिस प्रकार प्राणी कुछ समय परिश्रम करके थक जाता है और कुछ समय तक आराम करके ताजगी अनुभव करता है, उसी तरह जड़ धातुएँ भी करती हैं। इसका अर्थ यह था कि जड़ और चेतन दोनों में भौतिक कारणों के परिणामस्वरूप एक समान प्रतिक्रिया होती है।

"जड़ में अनुभव करने की शक्ति है, तब वनस्पति में तो अवश्य होनी चाहिए, इस कल्पना ने श्री बसु को नई दिशा में सोचने के लिए प्रेरित किया। भारतीय विचारधारा तो पहले से ही वनस्पति में जीव को स्वीकार करती है। जगदीशचन्द्र बसु ने जब इस दिशा में परीक्षण किए, तो उन्हें और भी चमत्कारपूर्ण अनुभव हुए। लाजवन्ती की पत्तियां मनुष्य का हाथ लगते ही सिकुड़ जाती हैं और कुछ समय बाद खिल जाती हैं। कुछ फूल प्रातःकाल होते ही खिल जाते हैं और सांयकाल बन्द हो जाते हैं, मानो सोना चाहते हैं। सूरजमुखी अपना मुख सूर्य की दिशा के साथ ही बदलती रहती है।

"ये उदाहरण इस बात को सिद्ध करते थे कि वनस्पतियों में जीव है, किन्तु बसु को अपने सिद्धान्त को विशुद्ध वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध करना था, इसलिए उन्हें ऐसे यंत्र चाहिए थे, जो वनस्पतियों की सूक्ष्म से सूक्ष्म गति को स्वयं अंकित कर सकें। ऐसे यंत्र बाजार में उपलब्ध

नहीं थे। इसलिए उन्होंने स्वयं ही अत्यन्त सूक्ष्म यंत्रों का निर्माण किया। उनका रैजोनैंट रिकार्डर बताता है कि बहुत-सी चेष्टाएं, हम जिन्हें केवल जीव-जन्तुओं तक ही सीमित समझते हैं, वनस्पतियों में भी पाई जाती हैं। संगीत में कम्पन या प्रतिध्वनि के आधार पर ही इस यंत्र की रचना हुई है। मैग्नेटिक क्रस्कोग्राफ श्री बसु का दूसरा प्रसिद्ध यंत्र था। यह यंत्र अपने आप लिखता जाता है कि पौधा प्रति सैकिण्ड कितना बढ़ रहा है। यह यंत्र वास्तविकता को ५०० गुना बढ़ाकर लिखता है। इन दो यंत्रों के अतिरिक्त ऑसिलेटिंग रिकार्डर, फोटो सिन्थैटिक रिकार्डर आदि भी अनेक यंत्र उन्होंने बनाये। किसी मनुष्य की सांस का दबाव पड़ने पर वृक्ष की क्या हानि होती है यह भी इन यंत्रों द्वारा प्रकट हो जाता है।"

यूरोप विस्मित रह गया—ये दोनों आविष्कार सचमुच अद्भुत और क्रान्तिकारी थे। यूरोप के विद्वान् वैज्ञानिक यह अनुभव करते थे कि केवल चेतन में ही अनुभव करने की शक्ति है, जड़ में नहीं। श्री बसु के आविष्कारों ने वैज्ञानिकों को विस्मित कर दिया। १९०० ई० में पेरिस की अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान कान्फ्रेंस में उन्हें जड़ में अनुभव की शक्ति पर भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया गया। उनके व्याख्यानों ने उपस्थित वैज्ञानिकों को सचमुच आश्चर्य में डाल दिया। इसके बाद तो विभिन्न विदेशी विश्वविद्यालयों द्वारा अपने परीक्षण सिद्ध करने के लिए निमंत्रणों की बाढ़ लग गई।

वनस्पतियों में भी प्राण हैं और प्राणी वर्ग की भांति उनमें भी जीवन धारा प्रवाहित होती है। आकस्मिक घटनाओं, चोटों, गर्मी, सर्दी तथा विष आदि का उन पर भी प्राणियों की भांति प्रभाव पड़ता है और वे भी हर्ष, विषाद, भूख और प्यास अनुभव करती हैं। वनस्पतियां भी हमारी तरह सन्तान उत्पन्न करती हैं और काल-प्रभाव से अथवा भोजन आदि न मिलने से प्राणहीन हो जाती हैं, इत्यादि अनुभव उन्होंने एक विस्तृत ग्रन्थ में लिखकर प्रकाशित कर दिये। इस पुस्तक का नाम अंग्रेजी में 'रिस्पांस इन दी लिविंग एण्ड नानलिविंग' था।

विरोध और उपहास से संघर्ष—अंग्रेज वैज्ञानिक भारतीय प्रतिभा

का चमत्कार सुनकर प्रसन्न नहीं हुए । उन्होंने इन आविष्कारों को अवैज्ञानिक घोषित किया तथा श्री बसु का उपहास किया । इस विरोध के परिणामस्वरूप इंग्लैंड की प्रसिद्ध 'रॉयल सोसाइटी' ने उनके आविष्कारों को अपने पत्र में स्थान देने तक से मना कर दिया । एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने तो उनके सुने भाषणों के आधार पर लेख लिखकर इस आविष्कार का श्रेय स्वयं लेने का प्रयत्न किया । परन्तु श्री बसु ने जब आग्रह करके सत्य की जांच कराई तो श्री बसु के पक्ष में निर्णय हुआ । इससे श्री बसु की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैल गई ।

श्री बसु अपने वैज्ञानिक आविष्कार निरन्तर करते रहे । एक के बाद एक विश्व को आश्चर्यचकित करने वाले आविष्कार जारी रहे । एक सूक्ष्म यंत्र के द्वारा वे एक इंच के दस लाखवें भाग को भी नाप सकते थे । इन यंत्रों के द्वारा उन्होंने जब यूरोप के वैज्ञानिकों के सामने अपने आविष्कारों को पूर्ण घोषित कर दिया तब 'रॉयल सोसाइटी' ने भी इनके लेखों को अपने पत्रों में छापना स्वीकार कर लिया, जिसने कुछ समय पहले उन्हें छापना अस्वीकार कर दिया था ।

विश्व में सम्मान—एक ओर भारतमाता के सुपुत्र श्री रवीन्द्र अपनी दार्शनिक और काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करने के लिए विदेशों में निमंत्रित किये जा रहे थे, दूसरी ओर भारतमाता के दूसरे पुत्र श्री बसु वैज्ञानिक क्षेत्र में भारत की कीर्ति का विस्तार कर रहे थे । श्री बसु के आविष्कारों की धाक समस्त संसार में जम गई थी । यूरोप और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने के लिए इन्होंने अनेक यात्राएँ कीं । भारत सरकार ने इस प्रतिभाशाली वैज्ञानिक को उपाधि देकर सम्मानित किया और यूरोप के विश्वविद्यालयों ने भी डाक्टर की उपाधि प्रदान की ।

बसु विज्ञान-मन्दिर—१९१५ ई० में जगदीशचन्द्र बसु ने प्रेजीडेन्सी कॉलेज से अवकाश ग्रहण किया । सरकार ने अपने पेंशन के नियमों को एक ओर रखकर, उन्हें जन्मभर पूरा वेतन दिया ।

श्री बसु यद्यपि अवकाश ग्रहण कर चुके थे, परन्तु अपने आविष्कारों की परम्परा जारी रखने तथा भारतीय विद्यार्थियों में वैज्ञानिक शोध की

रुचि बढ़ाने के लिए १९१७ में बसु विज्ञान-मन्दिर की विधिवत् स्थापना की। यह स्थापना उनके ५९वें जन्म-दिन पर की गई थी। अपनी गाढ़ी कमाई का पांच लाख रुपया उन्होंने इस विज्ञान-मन्दिर की स्थापना में लगा दिया। अपने समस्त आविष्कार और विशेष यंत्र इसी संस्था को सौंप दिये। जनता और सरकार की ओर से भी इस महत्त्वपूर्ण संस्था को कुछ सहायता प्राप्त हुई।

वनस्पतियों में होने वाली जिन प्रतिक्रियाओं का दर्शन श्री बसु ने किया अथवा जगत् को कराया, उन्हें देख कर एक प्रोफेसर ने लिखा था—"ये सब परियों की कहानियों से भी अधिक आश्चर्यजनक हैं, परन्तु जिन्हें इन प्रयोगों को देखने का अवसर मिला है उन्हें पूरा विश्वास हो गया है कि ये प्रयोगशाला के चमत्कार हैं जिनके द्वारा प्राणी वर्ग में होने वाली अदृश्य क्रियाओं का रहस्योद्‌घाटन होता है।"

देहावसान—समस्त जीवन उन्होंने विज्ञान की सेवा में अर्पित कर दिया था। विज्ञान ही उनका जीवन था। २३ नवम्बर, १९३६ को इस महान् विज्ञानाचार्य का गिरिडीह में देहान्त हो गया। वे कुछ समय तक बीमार रहे थे। किन्तु अन्तिम क्षण भी उनको यह चिन्ता थी कि भारत में वैज्ञानिक शोध का कार्य बन्द न होने पाये। इसलिए अपने उत्तराधिकार पत्र में उन्होंने पन्द्रह लाख रुपया बसु विज्ञान-मन्दिर को दे दिया।

महान् मानव—श्री बसु के चरित्र को केवल एक वैज्ञानिक का चरित्र कहना भूल होगी। वे सच्चे मानव भी थे। उनका हृदय दुःखियों के दुःख को देखकर करुणार्द्र हो उठता था। वह अपनी आय का पंचमांश अपने निजी उपयोग को रखकर बाकी सब विद्यार्थियों और शिक्षा-संस्थाओं को बांट देते थे। उनके वसीयतनामे से प्रतीत होता था कि मद्य-निषेध, साहित्यिक उन्नति तथा स्त्री-शिक्षा आदि में भी वे रुचि रखते थे।

परन्तु श्री बसु की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे पूर्वी संस्कृति से ओत-प्रोत थे। एक लेखक के अनुसार अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन तथा भारत के वैज्ञानिक बसु दोनों जादूगर थे। "परन्तु दोनों की जादूगरी में उतना ही अन्तर है जितना पश्चिम और पूरब में, दोनों की विचारधाराओं और आदर्शों में। एडीसन ने प्रकृति को वश में कि

तो बसु ने संसार के समस्त जड़ और चेतन में एक चेतन-शक्ति का दर्शन करके प्रकृति के महान् लक्ष्य को स्पष्ट किया।"

श्री बसु की महान् कृतियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का एक ही उपाय है कि भारतीय युवक वैज्ञानिक क्षेत्र में अधिक से अधिक रुचि लें और नये-नये सत्यों का अनुसंधान करें।

९

विज्ञानाचार्य चन्द्रशेखर वेंकट रमन

बाबू गुलाबराय

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु, हैं न उनमें शिष्य की भी योग्यता !
जो थे सभी के अग्रणी आज पीछे भी नहीं,
हैं दीखती संसार में, विपरीतता ऐसी कहीं ?

—श्री मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती)

प्राचीन काल में तो भारत ज्ञान-विज्ञान के सभी विभागों में अग्रणी रहा है, उसको जगद्गुरु कहा गया है, किन्तु विदेशी आक्रमणों के तारतम्य के फलस्वरूप प्राप्त चिरकालीन दासता के कारण उसकी प्रतिभा कुंठित हो गईं और वह अग्रणी क्या पिछलग्गू होने की भी योग्यता खो बैठा।

विज्ञान की साधना उतनी अन्तर्मुखी नहीं है जितनी कि बहिर्मुखी। वह प्रयोग और प्रत्यक्ष का विषय है। अंग्रेजी राज्य में तो 'देशहि में परदेस भयो अब जानिए' की कविवर सत्यनारायण लिखित 'भ्रमदूत' की उक्ति सार्थक होती थी। हमें शिक्षा तो मिली, किन्तु मौलिक अनुसन्धान के अवसर कम मिले; हम विज्ञान के क्षेत्र में पिछड़े ही रहे और विदेशों का बौद्धिक ऋण हम पर बढ़ता ही गया। अवसर और प्रोत्साहन का अभाव रहते हुए भी कुछ माई के लाल विज्ञान के क्षेत्र में भी आगे बढ़ सके और उपर्युक्त पंक्तियों में व्यक्त कवि के धार्मिक पश्चात्ताप को किन्हीं अंशों में दूर करने में समर्थ हुए। ऐसे ही विरले माई के लालों में सर जगदीशचन्द्र बसु, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, डाक्टर मेघनाद साहा, प्रभृति वैज्ञानिकों के साथ सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' इसी परम पवित्र

ज्ञान की अविरत साधना के लिए सरकारी नौकरी के मोटे वेतन और सुखमय जीवन को रमन महोदय ने ठुकराया और अनुसन्धान कार्य में पूर्ण तन्मयता से जुट गये। 'रमन प्रभावों' के लिए उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। उनकी प्रखर प्रतिभा की रश्मियां भारत के बाहर भी भारत का नाम उज्ज्वल कर रही हैं। भारत को उन पर गर्व है।

जन्म और वातावरण—सर चन्द्रशेखर का जन्म त्रिचनापल्ली में ७ नवम्बर सन् १८८८ में हुआ। उनके पितृदेव का नाम श्री चन्द्रशेखर अय्यर था। घर के वातावरण और वंश-परम्परा का बालक के जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। श्री चन्द्रशेखर अय्यर को गणित और भौतिक विज्ञान में विशेष रुचि थी और संगीत के लिए उनके कान बड़े सधे हुए थे। वे आजीवन अध्ययन कार्य करते रहे।

असाधारण प्रतिभा—अन्य बालकों की भांति रमन भी वाल्टेर के एक स्कूल में भेजा गया। वहां उसके अध्यापक उसकी असाधारण प्रतिभा से प्रभावित हुए। प्रारम्भ में रमन ने विज्ञान में रुचि दिखाई फिर श्रीमती ऐनी बिसेन्ट के प्रभाव में आकर उसकी रुचि धर्म के अध्ययन की ओर हो गई। उसने बड़ी तन्मयता से रामायण और महाभारत का अध्ययन किया। उन धर्मग्रन्थों के अध्ययन से जो संस्कार बालक के मन पर पड़े वे उसके जीवन के प्रति दृष्टिकोण को सदा प्रभावित करते रहे हैं। धार्मिक ग्रन्थों की ओर यह रुचि चिरस्थाई नहीं रही। रमन का जन्म विज्ञान की उन्नति के लिये हुआ था। वे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होना चाहते थे। वे फिर भौतिक शास्त्र का अध्ययन करने लगे। उन्होंने फिर वैज्ञानिक प्रयोगशाला को अपनी कार्यस्थली बनाया, जब कि बारह-तेरह वर्ष की अवस्था तक अन्य बालक खेल-कूद में ही मस्त रहते। वेंकट रमन ने सन् १९०१ में अर्थात् १३ वर्ष की आयु में इन्टर की परीक्षा पास कर ली थी और मद्रास के प्रेसीडेन्सी कालेज के बी० ए० के विद्यार्थी बन गये थे। बी० ए० उन्होंने प्रथम श्रेणी में पास किया और भौतिक विज्ञान में पदक प्राप्त किया।

बी० ए० पास कर लेने के पश्चात् रमन को यह निश्चय हो गया कि उसका भावी कार्यक्षेत्र भौतिक विज्ञान ही रहेगा और वह उस दिशा में

प्रयत्नशील होने लगा। एम० ए० में भी भौतिक विज्ञान का ही विषय और उस परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी का प्रथम स्थान प्राप्त किया। परीक्षा से विद्यार्थी ने अपनी रुचि और योग्यता का परिचय दे दिया।

विलायत न जा सके––एम० ए० पास कर लेने के पश्चात् आजीविका का प्रश्न आया। योग्यता के कारण सभी अध्यापकों का वह वात्सल्य-भाजन बना हुआ था। भौतिक विज्ञान के अध्यापक ने उसे अपने विषय में विशेषता प्राप्त करने के लिए विलायत जाने की सलाह दी। उसने केवल मौखिक परामर्श देकर ही सन्तोष नहीं किया वरन् उसने प्रान्त के शिक्षा अधिकारियों को उसे इंग्लैंड जाने के निमित्त उपयुक्त छात्रवृत्ति देने के लिए प्रेरित किया। बालक की योग्यता को देखते हुए अधिकारियों ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया किन्तु 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि'––अच्छे काम में बहुत से विघ्न होते हैं––विलायत जाने के लिए डाक्टरी सार्टीफिकेट की आवश्यकता पड़ती है। रमन का स्वास्थ्य जैसा चाहिए था वैसा न था। स्वास्थ्य का प्रमाण-पत्र वे न प्राप्त कर सके और मन मार कर भारतवर्ष में रह कर कुछ काम करने का निश्चय करना पड़ा।

वित्त विभाग में––रमन के मित्रों ने उसे वित्त-विभाग की नौकरी के लिए प्रतियोगिता में बैठने की सलाह दी। वित्त-विभाग की परीक्षा पास करने के लिए रमन को इतिहास, जिसमें उसे कोई अभिरुचि न थी, अर्थशास्त्र और संस्कृत का अध्ययन करना पड़ा। विज्ञान के विद्यार्थी के लिए ये सब विषय दुरूह थे। लेकिन रमन के मस्तिष्क में अपूर्व ग्राहिका शक्ति थी। वह कठिनाइयों से घबराता न था। परीक्षा के लिए वह कलकत्ते आया। इस कठिन परीक्षा में भी उसने शीर्ष स्थान प्राप्त किया। उसकी अवस्था केवल अठारह वर्ष की थी। उसी अवस्था में परीक्षा में उच्चतम स्थान पाने के कारण डिपुटी एकाउण्टेण्ट जनरल बना दिया गया। जिस योग्यता से उस परीक्षा को पास किया था उसी योग्यता से उसने अपने पद का कार्य-भार संभाला।

विवाह––जाति की परम्परा के अनुसार तो रमन का विवाह बहुत जल्द हो जाना चाहिए था किन्तु उसने अपने अध्ययन में बाधा न डाली। नौकर हो जाने के पश्चात् विवाह के लिए वह इन्कार नहीं कर सकता

था। उसका विवाह एक कुलवती ब्राह्मण कन्या के साथ हो गया।

अनुसन्धान कार्य—नौकरी और विवाह उसके जीवन का लक्ष्य न था। वह अच्छी नौकरी पाकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता था किन्तु उसके जीवन की एकमात्र साध थी—विज्ञान के अनुशीलन द्वारा भारत का नाम उज्ज्वल करना। विज्ञान की सेवा करने का अवसर न मिलने के कारण यह उच्च पद भी उसके लिए आकर्षणहीन बन गया। 'जिन खोजा तिन पाइयां' ऐसा संयोग हुआ कि एक दिन सायंकाल को जब वे कलकत्ते की ट्राम में बैठे हुए घर जा रहे थे और उनका मन इसी उधेड़-बुन में लगा हुआ था कि इस नौकरी के साथ जिसमें नीरस अंकों की साधना करनी पड़ती है, विज्ञान का अनुशीलन किस प्रकार सम्भव हो सकेगा, उनका ध्यान एक नाम पर गया। उस पर लिखा हुआ था 'The Indian Association for the Cultivation of Science'। देखते ही उनके मन में एक विद्युत्-रेखा-सी दौड़ गई और उनको उसमें अपनी जीवन का साध की पूर्ति की संभावना चमक उठी। वे तुरन्त ट्राम से कूद पड़े और उस संस्था के सभाभवन में पहुंच गए। वहां कुछ वैज्ञानिकों की एक समिति बैठी हुई थी। उसके विचार-विमर्श से वे बड़े प्रभावित हुए और उनको लक्ष्य की पूर्ति के स्वर्णिम स्वप्न दिखाई देने लगे। वे उसके मंत्री से मिले और अपनी समस्या बतलाई। उसने इनका वैज्ञानिक अनुसन्धान के प्रति अदम्य उत्साह देख कर उन्हें उस संस्था की प्रयोगशाला में काम करने की आज्ञा दे दी। अन्धा क्या चाहे ? दो आंखें। इनका अवकाश समय उसी प्रयोगशाला में बीतने लगा। वहां वे कलकत्ते के प्रमुख वैज्ञानिकों के सम्पर्क में ही नहीं आये, वरन् सर आशुतोष मुखर्जी और सर गुरुदास बनर्जी जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों से उनकी घनिष्ठता हो गई। किन्तु सरकारी नौकरी (विशेषकर जब वह अखिल भारतवर्षीय हो) का एक अभिशाप यह भी होता है कि मनुष्य अपनी रुचि के स्थान पर अधिक दिनों तक नहीं रह सकता। उन दिनों जब बर्मा भारत का ही अंग था, रमन को रंगून भेज दिया गया।

विज्ञान-प्रेम—रंगून में वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए ऐसी सुविधाएं न थीं जैसी कि कलकत्ते में। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनके

उत्साह और रुचि में किसी प्रकार की कमी आ गई हो। एक बार ऐसा हुआ कि उन्होंने सुना कि रंगून से कुछ दूर किसी संस्था में एक वैज्ञानिक यंत्र आया है। उसको देखने की उनकी इतनी उत्सुकता बढ़ गई कि वे उसके देखने के लिए तुरन्त रवाना हो गये। पत्नी की प्रेमभरी अनुनय-विनय भी उनको उस कठिन संकल्प से विचलित न कर सकी। वे अर्द्ध-रात्रि की स्तब्धता में वहां पहुंचे और वहां के अधिकारियों को अपने विज्ञान-प्रेम से चकित कर दिया। उसको देखकर प्रातःकाल की उषा वेला में लौट आये। सारी रात जागते बिताई।

रंगून में उनको अपने पिता की मृत्यु का दुःखद समाचार मिला। वे ६ महीने की छुट्टी लेकर मद्रास चले गये। वहां पिता के श्राद्ध आदि कार्य से निवृत्त होकर अपने पुराने कालेज की प्रयोगशाला में जाने लगे। वहां वे अपनी रुचि के अनुकूल स्वच्छन्दता से काम करते रहे।

न्याय-प्रियता—छुट्टी समाप्त होने पर उनका तबादला नागपुर को हो गया। वहां वे बड़ी दक्षता और संलग्नता के साथ अपने पद के कार्य को करते रहे। वे बड़े न्यायप्रिय थे। यदि उनको निश्चय हो जाता कि किसी का दावा सत्य पर आधारित है, तो वे रूढ़िवाद और लाल फीते के चक्कर में न पड़ कर उसका काम तुरन्त कर देते थे। एक बार एक व्यक्ति सौ-सौ रुपये के अधजले नोटों का बण्डल लाया। उनके नम्बर भी मुश्किल से पढ़े जाते थे। वे विकृत हो चुके थे। रमन ने अपना पूरा समय लगा कर उनके नम्बरों को पढ़ने की कोशिश की और निश्चय हो जाने पर उसका रुपया दिला दिया। अन्याय और धोखेबाजी से उनको चिढ़ थी। जाली सिक्के या नोट बनाने वालों को वे निर्ममता के साथ उचित दण्ड दिलवाते थे। इस मामले में महाकवि भवभूति की निम्नोल्लिखित उक्ति उनके सम्बन्ध में सार्थक होती है:

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

अर्थात् वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल लोकोत्तर लोगों के मन को कौन समझ सकता है।

स्वाभिमान—कुछ दिनों पश्चात् रमन फिर कलकत्ते भेजे गये। वहां वे उसी वैज्ञानिक संस्था में फिर आने-जाने लगे और फिर वैज्ञानिक अनुसन्धान में जुट गये। कलकत्ता विश्वविद्यालय उन दिनों सर आशुतोष के नेतृत्व में उन्नति के पथ पर चल रहा था। वहां विज्ञान के कालेज की स्थापना हुई और उसके दाता महोदय सर तारक नाथ पालित ने भौतिक विज्ञान की एक पीठिका के लिये पर्याप्त धन सुरक्षित कर दिया था। धन तो था किन्तु उसके उपयुक्त अधिकारी व्यक्ति न था। सर आशुतोष का ध्यान रमन की ओर गया किन्तु उनको अपने मन में यह आशंका थी कि शायद रमन उच्च पद और उससे संलग्न उच्च वेतन का मोह न छोड़ सके किन्तु रमन उन लोगों में से न थे जो धन के पीछे लक्ष्यभ्रष्ट हो जायें। उन्होंने उस पद को तुरन्त स्वीकार कर लिया। सर आशुतोष ने भी रमन की नियुक्ति में विश्वविद्यालय का गौरव समझा किन्तु एक वैधानिक कठिनाई सामने आई। वह यह थी कि सर तारक नाथ ने जो पीठिका स्थापित की थी उसकी एक यह शर्त थी कि उसका अधिकारी वह हो सकता है जो यूरोप में शिक्षा प्राप्त कर चुका हो। सर आशुतोष भी ब्रिटिश रूढ़िवाद से बंधे हुए थे। योरोप उन दिनों विज्ञान के लिए काशी का सा महत्त्व रखता था। सर आशुतोष ने रमन से कहा कि जगह तुम्हारे लिये सुरक्षित रहेगी किन्तु तुम एक दो साल के लिये योरोप जाकर वहां की कोई डिग्री प्राप्त कर लो। रमन को भारतीय महाविद्यालयों का यह अपमान सहन न हो सका। उन्होंने कहा कि यह स्वाभिमान के विरुद्ध है कि योग्यता रखते हुए भी केवल नौकरी के अर्थ योरोप पढ़ने जाऊं और भारतीय संस्थाओं के अपमान में सहयोग दूं। वे अपने वचन पर दृढ़ रहे; उनकी दृढ़ता के आगे यूनीवर्सिटी के अधिकारियों को झुकना पड़ा। वह शर्त इनके लिये हटाई गई और रमन की नियुक्ति हुई। रमन योरोप नहीं गये थे किन्तु उनके मौलिक अनुसन्धानों की ख्याति सात समुद्र पार योरोप जा चुकी थी। फिर कोई कारण न था कि वे उस पद से वंचित रखे जायं।

विश्वविद्यालय में—रमन अपनी स्वाभाविक तन्मयता और संलग्नता के साथ अध्यापन और अनुसन्धान के कार्य में जुट गये। कलकत्ता

विश्वविद्यालय का विज्ञान का कालेज अनुसन्धान करने वाले विद्यार्थियों का आकर्षण-केन्द्र बन गया और उनकी देख-रेख में जो अनुसन्धान कार्य हुए वे इतने महत्त्व के थे कि कलकत्ता विश्वविद्यालय का नाम योरोप में हो गया और वहां के लोग उस संस्था को स्पर्धा की दृष्टि से देखने लगे।

प्रथम विदेश यात्रा—रमन के मित्र यह चाहते थे कि वे योरोप जायं और कलकत्ता विश्वविद्यालय में किये हुए कार्य को प्रकाश में लाएं। सन् १९२१ में ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों की महासमिति की एक बैठक इंग्लैण्ड में हुई। उसमें कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से चन्द्रशेखर वेंकट रमन का नाम भेजा गया। रमन तो इस सुअवसर से लाभ उठाने में कुछ आगा-पीछा सोच रहे थे। किन्तु सर आशुतोष के समझाने-बुझाने पर उन्होंने जाने की स्वीकृति दे दी। वहां वे अधिक दिनों तक तो नहीं ठहरे किन्तु जितने दिन वहां रहे उतने दिनों में उन्होंने वहां के वैज्ञानिकों पर अपनी विद्वत्ता की धाक जमा दी।

समुद्र का रंग—विलायत से लौटते समय वे जहाज में समुद्र की तरंगों की शोभा का प्राकृतिक आनन्द ही नहीं लेते रहे वरन् समुद्र के पानी के नीले रंग के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ऊहापोह भी करते रहे। उन्होंने यह परिकल्पना की कि यह रंग प्रकाश के प्रभाव से उत्पन्न हो जाता है। जब वे लौटकर आए तब उन्होंने प्रयोग द्वारा अपनी परिकल्पना की सत्यता प्रमाणित कर ली।

सम्मान—रमन महोदय प्रयोगशाला में अपने ही प्रयोगों में समय नहीं बिताते थे वरन् अपने विद्यार्थियों को भी अनुसन्धान-कार्य में प्रोत्साहन देते थे। सच्चा गुरु पारस से भी बढ़ा-चढ़ा होता है। पारस तो लोहे को सोना ही बनाता है, पारस नहीं बना सकता किन्तु गुरु शिष्य को अपना-सा ही पारस बनाने के प्रयत्न करता है। रमन महोदय ने 'Indian Association for the Cultivation of Science' नाम की संस्था का, जिसने उनकी वैज्ञानिक अनुसन्धान की साध को पूरा किया था, मंत्रित्व स्वीकार कर उसको भारतीय वैज्ञानिकों के एक सूत्रबद्ध होने का माध्यम बनाया। उन्होंने Indian Science Congress के संयोजन में भी सक्रिय भाग लिया। इस प्रकार वे स्वयं भी उठे और अपने साथ दूसरों

को भी ऊंचा उठाया । उनके विज्ञान के प्रति अखण्ड अनुराग और उस क्षेत्र की सफलताओं को देखते हुए कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टर ऑफ साइन्स की पदवी से विभूषित किया । १९२४ में रमन Fellow of the Royal Society of London चुन लिये गये । यह एक बड़े गौरव की बात थी । इने-गिने वैज्ञानिक जिनके मौलिक अनुसन्धान सर्व-स्वीकृति प्राप्त कर लेते हैं उनको ही इस सभा की सदस्यता प्राप्त होती है ।

कनाडा यात्रा——१९२४ में रमन को कनाडा में होने वाली ब्रिटिश साम्राज्य के वैज्ञानिकों की सभा में आमंत्रित किया गया । वे केवल दर्शक रूप से वहां नहीं जाना चाहते थे । जब उनको अपने प्रकाश सम्बन्धी अनुसन्धानों पर व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया तभी वे वहां गये । वहां वे अमरीका और कनाडा के प्रमुख वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आये । उसी सफ़र में उन्हें दुनिया की सबसे बड़ी दूरबीन देखने का अवसर मिला । उस यन्त्र को देखकर वे कृतकृत्य हो गये और उन्होंने कहा 'यदि केवल इसको ही देखने भारतवर्ष से आना पड़ता तो भी मेरी यात्रा सार्थक होती ।' कनाडा के प्राकृतिक दृश्यों से, विशेषकर वहां के पहाड़ और ग्लेशियरों से वे बहुत प्रभावित हुए । उनमें उनको नयनाभिराम दृश्य ही देखने को नहीं मिले वरन् उनमें वैज्ञानिक अनुसन्धान की मूल्यवान् सामग्री भी मिली । अमरीका से फिर इंग्लैंड गये । वहां उनको वैज्ञानिकों से बड़ा सम्मान मिला ।

रमन-प्रभाव--विदेश से लौटकर वे अपने अनुसन्धान-कार्य में लगे । उन्होंने प्रकाश के सहारे वस्तुओं के आन्तरिक निर्माण की खोज की । इस अनुसन्धान-कार्य में उन्होंने साबुन के बबूलों पर बड़े सफल प्रयोग किये और भौतिक विज्ञान में ख्याति प्राप्त रमन-प्रभावों की स्थापना की ।

रमन ने भौतिक विज्ञान की पत्रिका भी निकाली और उसकी मान्यता पाश्चात्य देशों की पत्रिका के बराबर बढ़ गई । जर्मनी की भौतिक विज्ञान की एक समिति के लिए उन्होंने वाद्य यन्त्रों पर एक लेख लिखा । उसमें उन्होंने वीणा और मृदंग की ध्वनियों का वैज्ञानिक विवेचन किया ।

रमन का तारतम्य--रमन महोदय की ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती

रही। देश और विदेश में उनके सिद्धान्तों को मान्यता मिलने लगी। १९२९ में होने वाली साइंस की कांग्रेस के वे सभापति निर्वाचित हुए। उसी साल इटली की वैज्ञानिक समिति ने उनको स्वर्ण पदक प्रदान किया और ब्रिटेन के सम्राट् ने उनको 'सर' की पदवी से अलंकृत किया। विलायत की सुविख्यात Faraday Society की ओर से वे रमन प्रभावों की व्याख्या करने के लिए आमंत्रित हुए। वे सपत्नीक वहां पधारे और कई विश्वविद्यालयों में गये। एक विश्वविद्यालय ने सम्मानार्थ उन्हें Ph.D. की पदवी प्रदान की, दूसरे ने उनको अपना सम्मान्य Fellow बनाया और रायल एशियाटिक सोसाइटी ने पदक प्रदान किया। रमन का सबसे बड़ा सम्मान तब हुआ जब कि १९३० में उनको नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। इस पुरस्कार की स्थापना एल्फ्रेड नोबल ने, जिसने कि एक बड़े प्रबल विस्फोटक का आविष्कार किया था, प्रायश्चित्त स्वरूप की थी। वह पुरस्कार हर वर्ष चार व्यक्तियों को दिया जाता है। (१) साहित्य का—जो १९१३ में कवीन्द्र रवीन्द्र को मिला था। (२) एक सबसे बड़े शान्ति-स्थापक को मिलता है। (३) एक चिकित्सा के क्षेत्र में सबसे बड़े आविष्कारक को दिया जाता है। यह पुरस्कार एक साल सिबेजोल के आविष्कारक को मिला था। (४) भौतिक विज्ञान का जो हमारे यहां के दो वैज्ञानिकों—मेघनाद साहा और रमन—को मिला है। इस पुरस्कार को प्राप्त करने के लिए उन्हें स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम जाना पड़ा था। वह पुरस्कार और पदक स्वयं स्वीडन के बादशाह ने अपने हाथ से प्रदान किया था।

रमन १९३१ में विदेश से वापिस आये। वे अपनी इस सफलता से सन्तुष्ट होकर बैठे नहीं रहे। तब से निरन्तर अनुसन्धान कार्यों में सच्चे कर्मयोगी की भांति लगे रहते हैं। वे इन सब सम्मानों को तो अपने वैज्ञानिक जीवन का श्रीगणेश ही मानते हैं। वे पुरस्कारों की परवाह नहीं करते हैं। इनको वे वैज्ञानिक जीवन की आकस्मिक घटनाएं मात्र समझते हैं। उनको इन पुरस्कारों से इतनी ही प्रसन्नता होती है कि वे उनके मित्रों को प्रसन्नता देते हैं। वे स्वयं तो अपने कार्य की परवाह करते हैं।

"Honours, praises, rewards—these are mere incidents in the life of a true man of Science, and he passes over them without notice. If an occasion arises for his friends, as for example this assembly, to take notice of it, there is just this satisfaction that others are pleased at the rewards and recognition of the recipients. As for myself I look forward to my work."

"सन्मान, प्रशस्तियाँ, पुरस्कार—ये सब एक सच्चे वैज्ञानिक के जीवन में आकस्मिक घटनाएँ मात्र हैं और उसे इनकी लेशमात्र भी आकांक्षा नहीं होती। अगर कभी उसके मित्र किसी सम्मेलन में इनकी चर्चा भी करते हैं तो वैज्ञानिक को तो इससे केवल इसीलिए संतोष और हर्ष की अनुभूति होती है क्योंकि उसके मित्र इन पुरस्कारों और इनके प्राप्त करने वालों की प्रतिष्ठा से प्रसन्न हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरा लक्ष्य तो केवल अपने कार्य के प्रति निष्ठा है।"

१०

सुभाषचन्द्र बोस

सत्यकाम विद्यालंकार

हमारे राष्ट्र-निर्माताओं में सुभाषचन्द्रचन्द्र बोस का स्थान अद्वितीय है। वही एक व्यक्ति थे जिन्होंने भारत के सार्वजनिक जीवन में एक बार नहीं, अनेक बार महात्मा गांधी जैसे बड़े नेता से टक्कर ली। इन टक्करों में भले ही उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली हो, परन्तु उन्होंने लोकप्रियता के आगे अपने और अपने सिद्धान्तों को कभी नहीं झुकाया। उनकी नीति के कट्टर विरोधी भी उनकी दृढ़ता, स्पष्टवादिता और तेजस्विता की मुक्त हृदय से प्रशंसा करते हैं।

बाल्यकाल से ही सुभाष विचित्र स्वभाव के थे। उड़ीसा की राजधानी कटक में एक ऊंचे कुल में उनका जन्म हुआ। उनके पिता रायबहादुर जानकीनाथ बोस कटक की म्युनिसिपैलिटी और जिला बोर्ड के प्रधान तथा नगर के मेधावी और अग्रगण्य वकीलों में थे। उनकी माता श्रीमती प्रभावती बोस पुराने कट्टर धार्मिक विचारों में विश्वास रखने वाली, सरल, सहृदय, स्वभाव की एक सीधी-सादी महिला थीं। सुभाष की पांच बहनें और छः भाई और थे। इनमें से सभी भाइयों ने अपने-अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की।

सुभाष की प्रारम्भिक शिक्षा एक यूरोपियन स्कूल में हुई। इस स्कूल के प्रोटेस्टैंट वातावरण का बालक सुभाष के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। धर्म के नाम पर जो ढोंग और दिखावा चलता है, उसमें सुभाष की आस्था कभी नहीं रही, यद्यपि आप धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे।

स्कूल में प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास करके——इस परीक्षा

में वे कलकत्ता यूनिवर्सिटी में द्वि आये थे—सन् १९१३ ई० में उन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश किया। इस कॉलेज में उनकी पढ़ाई अधिक दिन नहीं चली, क्योंकि सहसा उनका मन आध्यात्मिक वृत्तियों की ओर झुक गया। उन्होंने सोचा कि वे भी स्वामी विवेकानन्द के समान आध्यात्मिक शक्ति उपलब्ध करके विश्व में चमत्कार प्रदर्शित करेंगे। इन्हीं विचारों में डूबकर वह सोलह-सत्रह वर्ष की आयु में ही बिना किसी को सूचित किये हिमालय की ओर गुरु की खोज में चल पड़े। किसी अच्छे गुरु की संगति तो उन्हें नहीं मिली, लेकिन हां, कुछ दिन स्वामी विवेकानन्द के पास रहकर रामकृष्ण मिशन के बारे में ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लिया।

छह महीने तक व्यर्थ भटकने के बाद जब न सत्य के दर्शन हुए न सद्गुरु के, तब एक दिन नवयुवक सुभाष अकस्मात् घर आकर मां के चरणों में पड़ गये। मां-बाप, भाई-बहिनों तथा अन्य परिजनों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहाती हुई मां ने सुभाष को गले से लगाकर कहा, "सुब्बी! तूने तो मुझे मार ही डाला था।"

एक तीर्थ-यात्रा की चर्चा करते हुए उन्होंने एक बार कहा था, "मुझे कृष्ण का वह रूप जो तीर्थों में पूज्य है, आकर्षित नहीं कर पाता। मैं तो कृष्ण के उस रूप का पुजारी हूं जो उन्होंने कुरुक्षेत्र के धर्मयुद्ध में दिखाया था।"

घर लौट आने के बाद भी सुभाष के मन में एक बेचैनी-सी समाई रही। दो वर्ष बाद उन्होंने अपने एक मित्र को पत्र लिखकर अपने मन की स्थिति बतलाई थी। उन्होंने लिखा था, "प्रतिदिन मेरी यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि मुझे अपने जीवन में एक उच्च और निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति करनी है। इसके लिए मुझे शरीर और मन को अभी से तैयार करना है।"

अपने जीवन का यह महान् लक्ष्य अभी तक उनके सामने पूर्णतया स्पष्ट नहीं हुआ था, किन्तु यह बात साफ थी कि जिस दिशा में उनकी शिक्षा-दीक्षा हो रही थी, उससे उन्हें संतोष नहीं था। माता-पिता और

उनके परिजन उन्हें इंग्लैण्ड जाकर आई० सी० एस० पास करने की सलाह दे रहे थे। लेकिन देश का वातावरण इन सरकारी सम्मानों के विरुद्ध हो रहा था। गांधीजी की असहयोग-आंधी ने देश में विप्लव-सा फैला दिया था। जलियांवाला बाग के भीषण हत्याकाण्ड की गूंज अभी शान्त नहीं हुई थी। सुभाष का रक्त भी इन घटनाओं को पढ़कर खौलने लगता था। कभी-कभी वे स्वयं इस आग में कूदने का स्वप्न देखते थे, किन्तु उनके पास के मित्रों और शुभचिंतकों ने उनके सामने इंग्लैंड जाकर आई०सी०एस० की परीक्षा पास कर आने का प्रस्ताव रख दिया। सुभाष का मन एक अफसर बनकर सारा जीवन अपने गुलाम देशवासियों की गुलामी की जंजीरों को और दृढ़ बनाने का नहीं था। उन दिनों उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ मित्र हेमन्तकुमार से कहा था, "आई०सी०एस० में सफल हो जाने के बाद मेरे आदर्शों का अंत हो जायगा।"

फिर भी आप अपने परिजनों का आग्रह न टाल सके, और इन्हें इंग्लैण्ड जाना पड़ा। किन्तु जाते समय भी उन्होंने एक मित्र को लिखा, "मैं जा तो रहा हूं, पर मेरा मन अब भी डगमगा रहा है। मुझे अपने निश्चय पर संतोष नहीं है।"

इंग्लैण्ड के विलासी जीवन को देखकर उनका मन अपने देश की दरिद्रता पर और भी खिन्न हो जाता था और वे दिन-प्रतिदिन ब्रिटेन की साम्राज्यशाही के, जो भारत की दरिद्रता का मूल कारण थी, कट्टर शत्रु बनते जाते थे।

अगस्त १९२० ई० में वे आई०सी०एस० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने घर लिखा "दुर्भाग्य से मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया हूं। परन्तु मैं अफसर बनूंगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। मुझे लगता है कि मैं अपने देश और ब्रिटिश साम्राज्य, दोनों की सेवा एक साथ नहीं कर सकता। शीघ्र ही मुझे इन दोनों में से एक को चुनना होगा।"

अन्त में सुभाष ने आराम के जीवन की अपेक्षा देश-सेवा के कठिन मार्ग को ही अपने जीवन का मार्ग चुना। परीक्षा में पास होने के बाद वे 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया'—ब्रिटेन के भारत मंत्री—को अपना

त्याग-पत्र देकर लौट आये।

१६ जुलाई, १९२१ ई० को बम्बई आते ही वे उसी शाम मणि-भवन में महात्मा गांधी से मिले और लगभग एक घंटे तक उनसे राजनीतिक चर्चा की। इस चर्चा में ही उन्होंने गांधीजी से कह दिया था कि "असहयोग तो मेरी समझ में आता है, लेकिन यह अहिंसा क्या है?"

अहिंसा का अर्थ वे कभी नहीं समझे। इसी कारण राजनीतिक क्षेत्र में उनका गांधीजी से सदा मतभेद रहा। वे राजनीति में अहिंसा का कोई स्थान मानने के लिए तैयार नहीं थे। गांधीजी की राजनीति उन्हें बहुत विचित्र और बेजान-सी लगती थी। वे गांधीजी से भेंट करके उनके पास से दुःखी और निराश और जिन शंकाओं को लिए आये थे उन्हें लिये हुए ही लौटे।

किन्तु निराशा का यह कुहरा जल्दी ही दूर हो गया। जो उन्हें गांधीजी से नहीं मिला था वह देशबन्धु चितरंजनदास से मिल गया। दास बाबू को ही उन्होंने अपना राजनीतिक गुरु मान लिया। दास बाबू भी सुभाष से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने सुभाष को उन्हीं दिनों 'नेशनल कॉलेज आफ कलकत्ता' का प्रिंसिपल बना दिया। यह कॉलेज उन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए खोला गया था, जिन्हें असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए सरकारी शिक्षणालयों से निकाल दिया गया था। यहां सुभाष ने अपने अनथक परिश्रम से युवकों का बौद्धिक, मानसिक और शारीरिक स्तर ऊंचा किया। उन्होंने यहां एक स्वयंसेवक सेना का सूत्रपात किया। उनके ही शब्दों में यह सेना क्षत्रिय भावनाओं से भरपूर थी। उनका कथन था कि युवकों में संयम और साधना होनी चाहिए। यह साधना सद्विचारों, प्रेम और परमार्थ द्वारा सिद्ध होती है।

सार्वजनिक आन्दोलन में भाग लेने का पहला अवसर उनको तब मिला जब २५ दिसम्बर, १९२१ ई० को प्रिंस आफ वेल्स कलकत्ता आये। सारे देश ने एक साथ प्रिंस के स्वागत का विरोध किया था। कलकत्ता में इस विरोध-प्रदर्शन का नेतृत्व दास बाबू और सुभाष ने किया। इस प्रदर्शन के अभियोग में सुभाष को छह महीने की कैद का दंड मिला। यह आपकी प्रथम जेल-यात्रा थी।

सितम्बर १९२२ ई० में जब वे जेल से छूटे तो सारे बंगाल में भारी बाढ़ आ जाने के कारण हजारों गांव बह गये थे और लाखों आदमियों की क्षति हुई थी। कुछ स्वयंसेवक साथियों को लेकर वे बाढ़-पीड़ितों की सेवा में लग गये। इस सेवा फंड के लिए उन्होंने चार लाख रुपया इकट्ठा किया।

उन्हीं दिनों दास बाबू ने 'स्वराज्य-दल' का संगठन किया। सुभाष बोस इस दल के प्रधान मन्त्री थे और इसके मुख्य पत्र 'फॉरवर्ड' के प्रधान सम्पादक भी। इसका संचालन उन्होंने बहुत ही सुन्दर रीति से किया। बड़े-बड़े अनुभवी पत्रकार भी उनकी योग्यता तथा कार्य-कौशल से आश्चर्य में रह गये।

जब स्वराज्य-दल ने कलकत्ता कार्पोरेशन के चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया तो सुभाष को दिन-रात काम करना पड़ा। स्वराज्य दल को जीत का श्रेय सुभाष को ही था। चुनाव में सफल होने के बाद दास बाबू कार्पोरेशन के मेयर और सुभाष बाबू 'चीफ एक्जीक्यूटिव अफसर' बने। उस समय सुभाष की आयु २७ वर्ष की थी। इस पद का नियत वेतन ३०००) रु० मासिक था, किन्तु उन्होंने केवल १५००) रु० लेने का निश्चय किया। इस राशि का भी अधिक भाग वे पीड़ितों और दरिद्र व्यक्तियों की सहायता में व्यय कर देते थे।

उनके प्रबन्ध ने कार्पोरेशन की पुरानी शाही व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिया। कार्पोरेशन के अधिकारी खादी के कपड़े पहने दिखाई देने लगे। सार्वजनिक सड़कों के नाम बदलकर भारतीय नेताओं के नामों पर रखे गये और स्कूलों में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। वाइसरायों को मानपत्र देना बन्द हो गया। उनके स्थान पर राष्ट्रीय नेताओं का अभिनन्दन किया जाने लगा।

सुभाष की इन विप्लवकारी योजनाओं को ब्रिटिश साम्राज्य के लिए विघातक समझकर सरकार ने उन्हें २५ अक्तूबर, १९२४ ई० की सुबह को नजरबन्द कर दिया। उस समय के अर्द्ध-सरकारी पत्र 'स्टेट्समैन' ने सुभाष पर यह अभियोग लगाया कि सुभाष एक गुप्त क्रान्तिकारी दल के सदस्य हैं। किन्तु सरकार स्वयं कोई विशेष अभियोग प्रस्तुत

नहीं कर सकी। दास बाबू के नेतृत्व में जनता ने सरकार से मांग की कि सुभाष बाबू को या तो छोड़ दिया जाय या उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाया जाय। खिसियाकर सरकार ने उन्हें बर्मा की मांडले जेल में भेज दिया। सारे देश ने इस अन्यायपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध आवाज उठाई। सुभाष की कीर्ति सरकार के अत्याचारों के कारण देश भर में व्याप्त हो गई।

मांडले की जेल उन दिनों पृथ्वी पर साक्षात् नरक का नमूना थी। यहां आकर आप बीमार हो गए। फेफड़े कमजोर हो गए और भार भी बहुत घट गया। तब डाक्टरों की चेतावनी पर सरकार ने उन्हें इलाज के लिए स्विटजरलैण्ड जाने की शर्त पर छोड़ना चाहा। सुभाष ने शर्त मानने से इन्कार कर दिया। तब सरकार को बिना शर्त छोड़ना पड़ा। १६ मई, १९२७ ई० को तीन साल की कड़ी नजरबन्दी के बाद वे मुक्त हुए।

इस बीच दास बाबू की मृत्यु हो चुकी थी। जेल से छूटने के बाद मद्रास कांग्रेस के अध्यक्ष डाक्टर अन्सारी ने उन्हें कांग्रेस का प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। उन दिनों कुछ कांग्रेसी नेता असहयोग से थककर कौंसिलों में प्रवेश करके शासन चलाने के पक्ष में थे। सुभाष इन नेताओं की समझौता पसन्द मनोवृत्ति के विरुद्ध थे। कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में जब शासन कार्य में सहयोग देने का प्रस्ताव 'नेहरू-रिपोर्ट' के रूप में आया तो सुभाष ने कड़े शब्दों में उसका विरोध किया। इसके बाद १९२८ ई० के दिसम्बर मास में कलकत्ते में युवक कांग्रेस की बैठक के सामने भी उन्होंने असहयोग-विरोधी परिवर्तनवादी नेताओं की आलोचना की।

सुभाष स्वभाव से विद्रोही और प्रगतिवादी थे। अधिकारों की भिक्षा मांगने और झुकने की नीति से वे कभी सहमत नहीं हुए, इसलिए जब ३१ अक्तूबर, १९२९ ई० को कांग्रेसी नेताओं ने भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य मांगने की योजना बनाई तो उसके मसविदे पर उन्होंने हस्ताक्षर नहीं किए। वे भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य चाहते थे, समझौते वाला अधूरा स्वराज्य नहीं।

आखिर कांग्रेस ने भी अगले वर्ष लाहौर में पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य घोषित कर दिया। सुभाष ने इस प्रस्ताव का हार्दिक स्वागत किया।

किन्तु उन्होंने गांधीजी के दूसरे प्रस्ताव का जबर्दस्त विरोध किया जिसमें वायसराय लार्ड इरविन को बम-दुर्घटना से बच जाने पर बधाई दी गई थी।

उन्होंने उस समय कांग्रेस में दो प्रस्ताव रखे। पहला यह कि देश में समानान्तर सरकार बना दी जाए और दूसरा यह कि कांग्रेस किसानों और मजदूरों से सम्पर्क बढ़ाए। कांग्रेस के खुले अधिवेशन में उन्होंने गांधीजी के प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा था कि "हमारे कई नेता आयु में हमसे बड़े हैं, उनकी देश-सेवा का अवधिकाल भी हमसे अधिक है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उनकी सभी बातें मानने को विवश हों। हमारा अपना भी कुछ निर्णय और अनुभव है। हमारी राय में उसका मूल्य पुराने नेताओं की बेजान योजनाओं से बहुत अधिक है।"

गांधीजी से मतभेद होते हुए भी वे उनके नेतृत्व में चलाये गए सब आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेते रहे। २१ अप्रैल, १९३० ई० को वे कानून भंग करने के अपराध में पकड़े गए और अलीपुर जेल में रखे गए। इसी जेल के कुछ पठान वार्डरों ने उन पर लाठी प्रहार किया था, जिससे आप कई घण्टे मूच्छित रहे थे।

जेल में उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। तब सरकार ने उन्हें स्वास्थ्य-लाभ के लिए विदेश-यात्रा की अनुमति दे दी। सुभाष वियाना पहुंचे। वहां उन दिनों श्री विट्ठलभाई पटेल भी अपना इलाज करा रहे थे। विट्ठलभाई पटेल ने सुभाष को यूरोप में भारतीयों के पक्ष में आन्दोलन करने की सलाह दी। दोनों ने मिलकर एक वक्तव्य निकाला, जिसमें गांधीजी की अहिंसात्मक नीति पर अविश्वास प्रकट किया गया था।

इसके बाद उन्होंने यूरोप के अनेक देशों का भ्रमण किया। प्राग के लार्ड मेयर उन्हें स्वयं लेने आये। वे रोम भी गए। वहां वे भूतपूर्व अफगान सम्राट् अमानुल्ला से भी मिले। आयरलैण्ड के डी० वेलरा से उनकी भेंट हुई। तीन-चार वर्ष वे विदेश में भ्रमण करके भारतीय स्वतन्त्रता के अनुकूल वातावरण बनाते रहे।

यूरोप से वापस आने पर वे ही हरिपुर कांग्रेस के प्रधान बने। सुभाष ने अपने भाषण में सरकार की आनेवाली 'फेडरल योजना' का तीव्र विरोध

किया। इससे गांधीजी सुभाष के विरुद्ध हो गए। सुभाष ने खुले आम कह दिया, "पुराने नेता सरकार से सुलह करना चाहते हैं और मैं एक वामपक्षी प्रधान उनकी राह में रोड़ा हूं।" इस वक्तव्य ने गांधीवादी कांग्रेसी नेताओं को सुभाष के विरुद्ध कर दिया। अगले वर्ष के लिए कांग्रस के अध्यक्ष का जब चुनाव हुआ तो सुभाष फिर २०३ वोटों से जीते। तब गांधीजी ने कांग्रेस को छोड़ देने की इच्छा प्रकट की। सुभाष यह नहीं चाहते थे कि उनके कारण गांधीजी को कांग्रेस से बाहर जाना पड़े। इसलिए वे स्वयं कांग्रेस से अलग हो गए। बाहर आकर उन्होंने 'फॉर्वर्ड-ब्लाक' का संगठन किया, किन्तु वे गांधीजी को ही राष्ट्र का सम्मानित नेता मानते रहे। मतभेद होते हुए भी गांधीजी में उनकी अगाध श्रद्धा थी।

इसके कुछ दिनों बाद 'हॉलवेल' की मूर्ति के आन्दोलन के सम्बन्ध में भारत-रक्षा कानून के अन्तर्गत सरकार ने सुभाष को गिरफ्तार कर लिया। दूसरा विश्व युद्ध प्रारम्भ हो चुका था। ऐसे स्वर्णिम अवसर को आप जेल के सींखचों में बन्द होकर नहीं बिताना चाहते थे। अतः आपने जेल में आमरण उपवास की घोषणा कर दी। इस घोषणा से डरकर सरकार ने सुभाष को जेल से छोड़ दिया, लेकिन घर में नजरबन्द कर दिया। घर के चारों ओर सन्तरियों का कड़ा पहरा था। हर दो घण्टे के बाद, चाहे रात हो या दिन, संतरी झांककर यह देख लेता था कि सुभाष बाबू क्या कर रहे हैं।

सुभाष बाबू को संतरी की आंखों में धूल झोंककर घर से भाग जाना बड़ा कठिन काम मालूम हुआ, किन्तु कठिन कामों में ही सुभाष बाबू को आनन्द आता था। बहुत सोचने के बाद उन्होंने एक तरकीब निकाली। भागने से कुछ दिन पहले यह ऐलान कर दिया गया कि वे समाधि में हैं, दुनिया के किसी भी आदमी से नहीं मिलेंगे। संतरी को भी उन्होंने अपने निश्चय की सूचना दे दी। इस सूचना के बाद उन्होंने दरवाजे की ओर पीठ करके समाधि लगा ली। भोजन लाने वाले को भी आपने अन्दर आने से मना कर दिया और अखण्ड समाधि लगाने की घोषणा कर दी। बहुत दिनों तक वे लगभग एक ही आसन से बैठे रहे। संतरी जब भी अन्दर झांकता तो उन्हें मूर्तिवत् बैठे पाता। इतने दिनों में उनके मुख पर काफी

लम्बी दाढ़ी निकल आयी थी। इसी दाढ़ी ने मौलवी के वेश में भाग जाने की सहूलियत दी।

निकलते वक्त उन्होंनें मौलवी का वेश बना लिया था। पंजाब मेल से चलकर वे पेशावर पहुंचे। वहां एक हमदर्द पठान के घर ठहरे। वह पठान अनपढ़ था, लेकिन धर्मान्ध नहीं। उस पठान ने बातचीत के सिलसिले में जब यह कहा 'मजहब हैवान को इन्सान बनाने के लिए है' तो उन्हें अपने देश के मुसलमानों की कट्टरता पर बड़ा दुःख हुआ। पेशावर में उनको अपना एक सहकारी भगतराम मिला। उसे उन्होंने अपने साथ ले लिया। भगतराम पठानों की भाषा धाराप्रवाह रूप से बोल सकता था। देखने में भी वह पठान लगता था। उसका नाम रहमतखां रखा गया। पेशावर से चलकर सुभाष बाबू जमरूद के किले के पास से निकले और शाम होते गढ़ी पहुंच गये। गढ़ी में दो दिन विश्राम किया। तीसरे दिन अदाशरीफ पहुंचे। रास्ते में खूखार आक्रमणों से वे बाल-बाल बचे। वहां से वे काबुल की ओर चल पड़े। उन दिनों काबुल नदी में बाढ़ थी। उसे पार करना मौत से खेलना था।

कोई नाव वाला नदी पार कराने के लिए नहीं मिला। आखिर मशकों पर बैठकर लहरों में डूबते नदी पार की। नदी के दूसरी ओर लारियों का अड्डा था। बड़ी देर तक लारियों की इंतजार करते रहे। कोई खाली नहीं मिली। शाम ढलने के बाद लारी आई, किन्तु वह खचाखच भरी हुई थी। ड्राइवर से कह-सुनकर आप लारी की छत पर बैठ गये। उसी लारी ने आपको काबुल पहुंचा दिया। काबुल में ठहरने का ठिकाना न था। बहुत कोशिश के बाद एक सराय मिली, जो इतनी तंग और गंदी थी कि घुड़साल नजर आती थी। जेल की काल कोठरी भी उससे अच्छी होती है। बाहर कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। वे दिन भर के थके और भूखे थे। रहमतखां (भगतराम) बाजार से खाना लाया। सर्दी रोकने के लिए लकड़ियां जलाकर रात गुजारी। कुछ दिन इस सराय में रुकना पड़ा। होटल का कच्चा और गंदा खाना खाते-खाते उनको पेचिश की बीमारी हो गयी। रहमत खां शहर से डाक्टर बुला लाया। यह डाक्टर भी एक भारतीय क्रान्तिकारी था। इस डाक्टर ने बर्लिन में

आजाद हिन्द फौज का संगठन किया था। उससे मिलकर सुभाष बाबू को बड़ा संतोष हुआ।

किन्तु काबुल का एक गुप्तचर सुभाष बाबू को संदेह की दृष्टि से देखने लगा था। उसने उन्हें पुलिस में ले जाने की धमकी भी दी थी। बड़ी कठिनाई से उससे पीछा छुड़ाया। रिश्वत की एक बड़ी रकम देनी पड़ी। तब उन्होंने काबुल में रूसी राजदूत के ऑफिस तक पहुंचने का निश्चय किया। उनका खयाल था कि रूसी ऑफिस से उनको रूस जाने की सहायता मिल जायगी, किन्तु उनका यह विश्वास गलत साबित हुआ। सराय में रहते-रहते उनके पीछे कई जासूस लग गये थे। इसलिए सराय को छोड़ना पड़ा और वे डाक्टर की सलाह से करीमुल्लाखां के यतीमखाने में चले गये। वहां से उन्होंने इटली के राजदूत से भेंट करने की कोशिश की। यह कोशिश सफल हो गई। इटली के राजदूत ने भी उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उसे एक पत्र भेजा गया जिसमें भारत की शोचनीय अवस्था का वर्णन था और भारतीय आजादी के लिए सहयोग मांगा गया था। राजदूत ने उनके पत्र के उत्तर में जो पत्र लिखा था उसमें विश्वास दिलाया था कि इटली की ओर से पूरा सहयोग प्राप्त होगा और यह भी लिखा था कि उनका खत मैं रोम भेज देना चाहता हूं। शीघ्र ही इस विषय में रोम या बर्लिन से कुछ आदेश आने वाले हैं। इसलिए मैं जरूरी समझता हूं कि आप से जल्दी ही मुलाकात हो सके। कृपया शीघ्र ही मुलाकात का समय निश्चित करें।

इस बीच अंग्रेज सरकार ने भी अपने गुप्तचर काबुल भेज दिये थे। गुप्तचरों की यह टुकड़ी हथियार बेचने वाले अंग्रेज सौदागरों के वेष में शहर के बाजारों में चक्कर काट रही थी। काबुल के कुछ कम्युनिस्ट भी सुभाष बाबू के विरुद्ध थे। वे भी उन्हें गिरफ्तार करवाने में अंग्रेज जासूसों की मदद कर रहे थे।

इन खतरों से बचकर चलना बड़ा कठिन काम था। कई बार सुभाष बाबू बहुत निराश हो जाते थे। किन्तु देश को आजाद कराने की जबर्दस्त इच्छा उनको अपने मार्ग पर निरन्तर चलने की प्रेरणा देती थी।

कुछ दिन बाद सुभाष बाबू के पास इटली के राजदूत का एक पत्र

आया, जिसमें लिखा था—

"हमें बड़ा अफसोस है कि आपके ठहरने का कोई खास प्रबन्ध नहीं है। हमारे हाथ बंधे हुए हैं। अफगानिस्तान की सरकार तटस्थ सरकार है। उससे हमें किसी किस्म की सहायता नहीं मिल सकती। हां, यदि आप रोम या बर्लिन जाना पसन्द करेंगे तो हम बड़ी खुशी से आपके लिए आवश्यक प्रबन्ध कर देंगे।

"रोम में आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके चेहरे की भव्य-स्मृति आज भी मेरे हृदय पर अंकित है। कृपया अपनी सुविधा देखते हुए मुझसे मिलिए। हमारे गुप्तचरों ने पता दिया है कि अंग्रेजों ने आपकी खोज के लिए गुप्तचरों का जाल बिछा दिया है। आप खूब होशियारी से रहिए।"

दूसरे दिन इटली का राजदूत शिकार के बहाने जंगल की ओर घूमने गया, जहां सुभाष बाबू से भेंट होने का निश्चय हुआ था। भेंट का समय सात बजे तय हुआ था। सात बज कर पांच मिनट पर एक मोटर उधर से लौट रही थी। उस पर इटली का झंडा था। वही राजदूत की मोटर थी। किन्तु वह सुभाष बाबू के पास से तेजी से निकल गई। दो मिनट बाद दूसरी मोटर आई। वह उनके पास रुक गई। इटली का राजदूत उसी में बैठा था। उसकी मोटर पर बैठकर वे इटली के राजदूतावास में पहुंचे, जहां दो घंटे तक बातचीत होती रही। सुभाष बाबू ने इटली से फौजी सहायता मांगी। राजदूत ने सुभाष बाबू को सलाह दी कि वह रोम और बर्लिन जाकर मुसोलिनी और हिटलर से मिलें।

उन्हीं दिनों अफगानिस्तान के जर्मन दूतावास से एक पत्र सुभाष बोस को दिया गया। यह पत्र जापान से रासबिहारी बोस ने लिखा था। उस पत्र का आशय यह था—

"आपके काबुल पहुंचने तक की खबर हम तक पहुंच गई है। जापानी सरकार ने आपको हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया है। जर्मनी और इटली में भी आपको हर तरह की सहायता मिल सकती है। इसलिए आप जर्मनी और इटली अवश्य जायें और वहां के सर्वोपरि अधिकारियों से मिलकर हथियारों की सहायता प्राप्त करें। मैंने सुना है कि आप रूस

जाने का भी इरादा रखते हैं। मेरे विचार से आपको रूस से विशेष सहायता नहीं मिलेगी। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में शीघ्र ही कोई परिवर्तन होने वाला है।"

इस पत्र के बाद सुभाष बाबू का जर्मन दूतावास से सीधा सम्पर्क बन गया। आपके एक सहकारी प्रायः प्रतिदिन जर्मन राजदूत से मिलकर भविष्य की योजनाओं पर विचार-विनिमय किया करते थे।

सुभाष बाबू जर्मनी पहुंचकर हिटलर से मिले। अंग्रेज़ी सरकार को उनके जर्मनी पहुंचने का समाचार उस समय मिला जब अचानक एक दिन जर्मन रेडियो स्टेशन से सुभाष बाबू की सिंह-गर्जना सुनायी पड़ी।

जर्मनी पहुंचकर श्री सुभाष ने हिटलर से भेंट की और वहां जर्मनी द्वारा कैद किये भारतीय सिपाहियों से आजाद हिन्द सेना को संगठित किया। चूंकि जर्मनी भारत से बहुत दूर था, इस सेना का कुछ उपयोग नहीं हो सकता था, इसलिए उन्होंने यही उचित समझा कि जापान जाकर आजाद हिन्द फौज का संगठन करें। जापान से रासबिहारी बोस का निमंत्रण पाकर वे एक पनडुब्बी में जर्मनी से जापान चल पड़े। जापान पहुंचकर उन्होंने आजाद हिन्द फोज का संगठन शुरू कर दिया। आजाद हिन्द फोज के साथ उन्होंने एक आजाद हिन्द सरकार भी बनायी, जिसे लगभग उन्नीस देशों की सरकार ने एक व्यवस्थित सरकार के रूप में मान लिया था।

आजाद हिन्द फोज का इतिहास भारत की आजादी के इतिहास में सुनहरे अक्षरों में लिखा जायगा। इससे पूर्व कभी भारत की स्वाधीनता के लिए सेना का इतना जमाव नहीं किया गया था।

अंग्रेज फौज जब मलाया से भागी तो मलाया में सात लाख हिन्दुस्तानी थे। अंग्रेज अफसर इन हिन्दुस्तानी नागरिकों को अरक्षित अवस्था में छोड़कर भाग गये थे। इन नागरिकों में से बहुत से जवान आजाद हिन्द फौज में भर्ती हो गये।

कुछ दिन बाद सिंगापुर का पतन हो गया।

आजाद हिन्द फौज का झंडा तिरंगा ही था। 'जय हिन्द' उसकी सलामी थी। हिन्दू या मुसलमान सब एक-दूसरे से 'जय हिन्द' कहकर

भेंट करते थे। सब सिपाही एक साथ भोजन करते थे। इस फौज की भाषा हिन्दुस्तानी और लिपि रोमन थी। जो लोग इस फौज में भर्ती होते थे उन्हें निम्न प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे —

"मैं स्वयं आजाद हिन्द फौज में भर्ती होता हूं। भारत की आजादी के लिए मैं तन, मन, धन निछावर कर देने की दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूं। मैं भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को भी तैयार हूं। मैं स्वार्थ का परित्याग कर अपने देश की सेवा करूंगा। देशवासियों से, चाहे वे किसी भी जाति, सम्प्रदाय व प्रान्त के हों, किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखूंगा और सभी भारतीयों को अपना भाई समझूंगा।"

सिंगापुर में भी आजाद हिन्द फौज की भर्ती हुई। वहां आजाद हिन्द फौज की पहली परेड के समय सुभाष बाबू ने जो भाषण दिया उसमें कहा—

"हमारी फौज भारत की पराधीनता की जंजीरों को तोड़ेगी। हमारा नारा 'दिल्ली चलो' है। मैं नहीं जानता कि हममें से कितने आदमी उस विजय को देखने के लिए जीवित रहेंगे, किन्तु इतना मैं अवश्य जानता हूं कि हम लोग विजयी होंगे और अवश्य होंगे। आज मैं तुम्हें भूख, प्यास, पीड़ा और बेबसी के सिवाय कुछ नहीं दे सकता, किन्तु बहुत शीघ्र ही भारत आजाद होगा।"

सभा में बैठे हजारों नौजवान पुकार उठे, "हम अपना खून देंगे।"

सुभाष बाबू—"आप इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दीजिये।"

भीड़ में से कुछ नौजवान प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए आगे बढ़े। तब सुभाष बाबू ने कहा—

"इस प्रतिज्ञा-पत्र पर साधारण स्याही से हस्ताक्षर नहीं करना है। वही आगे बढ़े जिसकी नसों में सच्चा भारतीय खून बहता हो, जिसे अपने प्राणों का मोह न हो और जो आजादी के लिए सर्वस्व त्याग करने के लिए तैयार हो।"

हस्ताक्षर करने के लिए जो भीड़ आगे बढ़ी उसमें सबसे पहले सत्रह लड़कियां थीं। इन्होंने अपनी कमर से छुरियां निकालकर अपनी अंगुली

पर घाव किया और बहते खून से प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये ।

सुभाष बाबू की आजाद हिन्द फौज में महिलाओं का भी एक दल था । उसकी नायिका कर्नल लक्ष्मीबाई थीं । उस दल में हजारों कुलीन घरानों की लड़कियां सैनिक शिक्षा पा रही थीं । लक्ष्मीबाई 'झांसी रेजीमेंट' की कमांडर होने के अतिरिक्त आजाद हिन्द सरकार मंत्रिमंडल की सदस्या भी थीं ।

५ जुलाई १९४३ ई० के दिन सुभाष बाबू ने आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व अपने हाथ में लिया था । चार महीने बाद उन्होंने एक स्थायी सरकार की स्थापना की थी । पूर्वी एशिया के प्रत्येक देश में उसकी शाखाएं संगठित कर दी गयीं ।

बर्मा से आजाद हिन्द फौज जब पहले-पहल आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए चली थी उस समय फौज के सामने उन्होंने बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया था । उस भाषण की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

"क्षितिज के उस पार, उन धूमिल पहाड़ों की ओट में, हमारी जन्मभूमि है । इसी भूमि पर स्वर्ग के देवता अवतरित हुए थे । इसी भूमि की धूलि में राम और कृष्ण घुटनों के बल चले थे । इसी भूमि में हमने और तुमने जन्म लिया है । हमारी नस-नस में इसी भूमि का प्यार गुंथा हुआ है ।

"आज हम अपनी मातृभूमि से दूर हैं । हमारी जननी हमें बुला रही है । हमारे देश से आती हुई हवा की लहरों पर जो पुकार गूंज रही है, उसे सुनो ! दिल्ली का लाल किला हमारे स्वागत के लिए प्रतीक्षा कर रहा है । चालीस करोड़ हृदय हमारे स्वागत के लिए धड़क रहे हैं । अस्सी करोड़ भुजाएं हमारे आलिंगन के लिए खुली हैं ।

"अब हम नहीं रुकेंगे । खून ने खून को पुकारा है । माता ने अपनी रूठी निर्वासित संतानों को बुलाया है । ईश्वर आपकी मदद करेगा । लेकिन ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जिनकी सांसों से तूफान उठता है । हमारे सामने दो ही लक्ष्य हैं, 'आजादी या मौत !' या तो दिल्ली में दाखिल होकर विजयी होंगे या हमारी लाशें धूल चूमेंगी ।"

आजाद हिन्द फौज ने हाथ में तिरंगा झंडा लेकर अंग्रेजी सेना पर आक्रमण किया । डेढ़ साल तक कोहिमा और इम्फाल के इलाकों में लड़ाई

होती रही। हजारों जवानों ने प्राणों की आहुति दी।

फौज ने पहला आक्रमण १८ मार्च, १९४३ ई० में किया। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों ने भी सुभाष बाबू के साथ हिन्दुस्तान की मिट्टी को हाथ में लेकर यह प्रण किया कि "जब तक हिन्दुस्तान आजाद नहीं होगा, हम पीछे नहीं हटेंगे। इम्फाल और अराकान की पहाड़ियां 'जय हिन्द' के नारों से गूंज उठीं।

वर्षा होने के कारण लड़ाई कुछ महीनों के लिए बन्द हो गयी। मार्च १९४५ में दूसरा आक्रमण किया गया।

किन्तु इस बीच विश्वयुद्ध का मानचित्र बदल गया। अंग्रेजी और अमेरिकन सेनाओं ने जर्मनी को हराकर १९ मई, १९४५ ई० को रंगून पर अधिकार कर लिया था। थोड़े दिन बाद आजाद हिन्द फौज के सिपाही भी कैद कर लिये गये।

रंगून पर अंग्रेजों का फिर कब्जा होने से पहले ही सुभाष बाबू हवाई जहाज से जापान के लिये रवाना हो गये थे। वह जहाज दुर्घटना का शिकार हो गया। जहाज को जो आग लगी वह आग ही भारत के लाखों युवकों के हृदय-सम्राट् श्री बोस की चिता बन गयी। आजादी के दीवाने ने आजादी के लिए लड़ते हुए प्राण त्याग दिये।

११

अजेय लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल

सत्यकाम विद्यालंकार

'पदं मूर्ध्नि समाधत्ते केसरी मत्तदन्तिनः ।'

भारत को स्वाधीन किसने कराया ? इस प्रश्न के उत्तर में शायद सन्देह हो सकता है, क्योंकि भारत को स्वाधीन कराने में बहुत-सी शक्तियों का सम्मिलित प्रभाव काम कर रहा था, किन्तु भारत के स्वाधीन हो जाने के बाद लगभग ६०० स्वतंत्र देशी राज्यों को भारतीय संघ में सम्मिलित करके देश को एक सुसंगठित राज्य बनाने का श्रेय पूर्णतया सरदार वल्लभभाई पटेल को दिया जा सकता है। और मजे की बात यह है कि इन ६०० राज्यों को भारत की केन्द्रीय सत्ता के अधीन करने में हैदराबाद के अतिरिक्त कहीं भी न तो सेना का ही प्रयोग किया गया और न किसी प्रकार का रक्तपात या उपद्रव ही हुआ। हैदराबाद में भी सेना का प्रयोग नाममात्र को हुआ। हताहतों की संख्या बिलकुल नगण्य रही। यह चमत्कारपूर्ण सफलता सरदार पटेल की दृढ़ता और नीति-कुशलता का परिणाम थी। कुछ लोगों ने उन्हें 'भारत का विस्मार्क' कहा है। किन्तु भारत की विशालता और सरदार पटेल के कार्य की गुरुता को देखते हुए बिस्मार्क की सफलताएं बहुत छोटी जान पड़ती हैं। पटेल और बिस्मार्क में वही अन्तर था, जो भारत और जर्मनी में है।

सरदार पटेल लौहपुरुष कहे जाते थे। उनका यह विशेषण पूरी तरह सार्थक था। उनके संकल्प में वज्र की सी दृढ़ता थी। जिस काम को कर लेने का वह निश्चय कर लेते थे, वह होकर ही रहता था। वह कम बोलते थे। पर जो कुछ वह बोलते थे, उसके प्रत्येक शब्द में अर्थ होता

था। इसीलिए उनका एक-एक शब्द ध्यान से सुना जाता था। उनके अनुयायी और उनके विरोधी, दोनों ही उनके शब्दों के सही मूल्य को पहचानते थे।

घटनाओं का चक्र जिस प्रकार चला, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि सरदार पटेल भारत की राजनीतिक सक्रान्ति के उस अवसर पर न होते, तो भारत स्वाधीन होने के कुछ ही समय बाद बीसियों छोटे-बड़े टुकड़ों में विभक्त हो गया होता। उस दशा में इतने बलिदानों के बाद प्राप्त की गई स्वतन्त्रता का कोई मूल्य न रह जाता। इसे देश का सौभाग्य ही कहना चाहिए कि उसे ऐसे विकट समय में ऐसा सुयोग्य कर्णधार प्राप्त हो सका।

वल्लभभाई का जन्म गुजरात में नादियाड़ ताल्लुके के करमसद गांव में ३१ अक्तूबर, १८७५ ई० को हुआ था। आपके पिता श्री झवेर भाई एक साधारण किसान थे। वह साहसी, धार्मिक और दयालु स्वभाव के थे। सम्भवतः १८५७ ई० के विद्रोह में वह खेतीबारी छोड़ कर शस्त्र लेकर विद्रोहियों के साथ हो गए थे। विद्रोह असफल रहा। काफी समय तक अपनी जान बचाने के लिए वह एक स्थान से भाग कर दूसरे स्थानों पर जाते रहे। तीन वर्ष पश्चात् जब वह एकाएक अपने गांव वापस लौटे, तब तक गांव के लोग उन्हें मृत समझ चुके थे।

साहस और संघर्ष-प्रिय—ऐसे साहसी पिता के पुत्र वल्लभभाई में साहस की मात्रा अधिक होनी स्वाभाविक ही थी। इसके साथ ही वल्लभभाई में संगठन की क्षमता भी बचपन से ही थी। जब वह विद्यालय में पढ़ते थे, तब भी वह विद्यार्थियों के साथ होने वाले अन्यायों के विरुद्ध हड़ताल इत्यादि का संगठन करते रहते थे। अध्यापकों के साथ झड़प हो जाने के कारण उन्हें एक-दो बार विद्यालय से निकाला भी गया। अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रवृत्ति आपके रक्त में ही थी।

प्रारम्भिक शिक्षा नादियाड़ में समाप्त करने के बाद आप बड़ौदा के हाई स्कूल में प्रविष्ट हो गए। विद्यालय में सरदार पटेल पढ़ाई-लिखाई में बहुत तेज नहीं थे। मैट्रिक में वह बिलकुल साधारण छात्रों की तरह ही पास हुए। इससे आगे की शिक्षा दिला पाना उनके पिता के वश से

बाहर था। इसलिए मैट्रिक पास कर लेने के बाद वल्लभभाई को अपने पांवों पर खड़ा होने के लिए गोधरा में मुख्तारी का काम शुरू कर देना पड़ा। वह बैरिस्टर बनना चाहते थे। किन्तु जब तक परिस्थितियां अनुकूल न हों, तब तक के लिए उन्हें अपनी यह इच्छा-मन में ही दबा लेनी पड़ी।

देखा यह गया है कि यदि मनुष्य के मन में कोई तीव्र इच्छा उत्पन्न हो, और वह उसे पूरा करने के लिए कटिबद्ध हो जाए, तो पहले-पहल असम्भव जान पड़ने वाली इच्छा भी पूर्ण होकर ही रहती है। उसकी पूर्ति के साधन अपने-आप न जाने कहां से जुटते चले आते हैं। कुछ दिन गोधरा में मुख्तारी करने के बाद वल्लभभाई बोरसद चले आए और वहां फौजदारी मुकद्दमों में वकालत करने लगे। विद्यालय में भले ही वल्लभभाई की बुद्धि पढ़ाई-लिखाई में न चमकी, किन्तु वकालत में उन्हें बहुत सफलता प्राप्त हुई। शीघ्र ही उन्होंने काफी पैसा इकट्ठा कर लिया, इतना कि उससे वह सरलता से विलायत जा सकते थे।

वल्लभभाई का विवाह १८ वर्ष की आयु में ही हो गया था। १८९८ ई० में उनकी पत्नी का असमय में ही स्वर्गवास हो गया। उन दिनों प्लेग फैली थी। प्लेग से बचाने के लिए वल्लभभाई ने उन्हें गांव भेज दिया, किन्तु उन्हें प्लेग हो ही गई। काफी इलाज कराने पर भी उन्हें बचाया न जा सका।

अद्भुत सहिष्णुता—पत्नी की बीमारी की चिन्ता होते हुए भी वल्लभभाई पहले से स्वीकार किए हुए मुकद्दमों की पैरवी करने जाते ही रहे। मुवक्किलों को उन्होंने भाग्य-भरोसे नहीं छोड़ दिया। एक दिन जब वह अदालत में एक मुकद्दमे की पैरवी कर रहे थे, उसी समय उन्हें एक तार मिला, जिसमें उनकी पत्नी की मृत्यु का दुःखद संवाद था। उस तार को पढ़कर उन्होंने जेब में रख लिया और पहले की भांति ही मुकद्दमे की बहस करते रहे। जब शाम को अदालत बन्द हुई, उस समय, उन्होंने अपने मित्रों को बताया कि उस तार में उनकी पत्नी के स्वर्गवास का दुःखद समाचार था। विपत्तियों को इसी प्रकार चुपचाप सह लेने की क्षमता ने ही उन्हें 'लौहपुरुष' बनाया था।

उस समय वल्लभभाई की आयु केवल ३३ वर्ष थी। उनकी पत्नी दो संतानें एक पुत्र और एक पुत्री, छोड़कर मरी थी। वल्लभभाई ने दूसरा विवाह नहीं किया।

इस समय वल्लभभाई के पास पैसा था। उन्होंने विलायत जाने के लिए एक कम्पनी से पत्र-व्यवहार करना शुरू किया। कम्पनी का एक पत्र उनके बड़े भाई विट्ठलभाई के हाथ पड़ गया। उन्होंने वल्लभभाई से अनुरोध किया—"पहले मुझे इंग्लैंड हो आने दो। तुम मेरे बाद चले जाना।" अपने हृदय की तीव्र इच्छा को दबाकर वल्लभभाई ने यह अनुरोध स्वीकार कर लिया। विट्ठलभाई इंग्लैंड चले गए और यथासमय बैरिस्टर बनकर लौट आए।

उसके बाद वल्लभभाई इंग्लैंड गए। वह केवल बैरिस्टर बनने के उद्देश्य से इंग्लैंड गए थे, इसलिए मां-बाप का पैसा फूंकने वाले अन्य भारतीय छात्रों की भांति वह इधर-उधर घूमते नहीं फिरे। पढ़ने में उन्होंने ऐसा परिश्रम किया कि वह परीक्षा में सर्वप्रथम रहे। उन्हें पचास पौंड की छात्रवृत्ति मिली और पिछला सारा शुल्क माफ हो गया। बैरिस्टरी पास करते ही आप सीधे भारत लौट आए।

विट्ठलभाई ने बम्बई में वकालत प्रारम्भ की थी और वल्लभभाई ने अहमदाबाद में। कुछ ही दिनों में दोनों भाइयों का नाम वकालत के क्षेत्र में चमक उठा। आय अच्छी हो जाने के कारण दोनों भाई ठाट-बाट से रहने लगे। उन दिनों वल्लभभाई पश्चिमी रहन-सहन को पसन्द करते थे और भारतीय वेषभूषा तथा रहन-सहन की खिल्ली उड़ाया करते थे।

राजनीति में प्रवेश—काफी धन कमा लेने के बाद विट्ठलभाई का विचार राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने का हुआ। दोनों भाइयों में तय हुआ कि बड़े भाई तो राजनीति में भाग लेना शुरू करें और छोटे भाई धनोपार्जन करके घर का खर्च चलाते रहें। विट्ठलभाई कुछ ही समय में राजनीति के क्षेत्र में भी प्रसिद्ध हो गए और १९२९ के सुधारों के अनुसार जब केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव हुए तो उनमें चुने जाकर आप असेम्बली के सबसे प्रथम अध्यक्ष बने थे। इस अध्यक्ष पद का कार्य आपने इतनी योग्यता से किया था कि उसकी प्रशंसा विदेशी दर्शकों ने भी की थी।

उन्हीं दिनों गांधीजी ने अफ्रीका से लौटकर भारत की राजनीति में प्रवेश किया था। पहले-पहल वल्लभभाई को गांधीजी की असहयोग और सत्याग्रह की नीति निकम्मी मालूम पड़ती थी। परन्तु एक बार सम्पर्क में आने के बाद वह गांधीजी के पक्के भक्त बन गए। १९१६ ई० में तो वह बैरिस्टरी को लात मारकर पूरी तरह स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। उनका और गांधीजी का यह साथ जीवन भर बना रहा।

पहले-पहल गोधरा में एक राजनीतिक सम्मेलन में बेगार-प्रथा को हटाने के सम्बन्ध में एक सम्मेलन में गांधीजी और पटेल का साथ हुआ था। बेगार-प्रथा को हटाने के लिए एक समिति बनाई गई थी। उस कमेटी के मन्त्री वल्लभभाई चुने गए थे। पटेल ने कुछ ही दिनों में बेगार-प्रथा को समाप्त करवा दिया।

१९१८ में खेड़ा जिले में फसलें खराब हो गई थीं। इसलिए वहां के किसानों ने सरकार से लगान माफ़ कराने की प्रार्थना की थी। किन्तु सरकार ने इस उचित प्रार्थना पर भी बिलकुल ध्यान नहीं दिया। वल्लभभाई ने किसानों के कष्ट को समझा और उन्हें सत्याग्रह करने की सलाह दी। अन्त में सरकार को किसानों की मांग स्वीकार करनी ही पड़ी।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत में जो दमन-चक्र चलाया था, उसका विरोध करने के लिए महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था। वल्लभभाई भी गुजरात में असहयोग के काम में जुट गए। उन्होंने अपने बच्चों को भी स्कूल से निकाल लिया, क्योंकि सरकारी स्कूलों का बहिष्कार करना भी असहयोग का एक अंग था। उन्होंने 'गुजरात विद्यापीठ' की स्थापना की और उसके लिए दस लाख रुपया एकत्र किया।

१९२२ ई० में चौरीचौरा कांड के कारण गांधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित कर दिया था। सरकार ने गांधीजी को पकड़कर छः साल के लिए जेल भेज दिया। उनकी अनुपस्थिति में गुजरात में पटेल ही राजनीतिक आन्दोलन का संचालन करते रहे। बोरसद के सत्याग्रह और नागपुर के झंडा-सत्याग्रह में उन्हें पूरी सफलता प्राप्त हुई।

१९२४ में आप अहमदाबाद नगरपालिका के अध्यक्ष चुने गए। इस पद पर रहकर आप चार साल तक नगर का सुप्रबन्ध करते रहे।

सफल सत्याग्रह—बारडोली का सत्याग्रह वल्लभभाई की ऐसी सफलता थी, जिसने उन्हें अखिल भारतीय नेताओं में ला खड़ा किया। इस सत्याग्रह में सफलता मिलने के कारण ही वह 'सरदार' कहलाने लगे थे। इस आन्दोलन का कारण यह था कि बारडोली में हर बीस साल बाद भूमि का नया बन्दोबस्त हुआ करता था। १९२८ ई० में जब बन्दोबस्त हुआ तो किसानों के लगान में बीस प्रतिशत वृद्धि कर दी गई। किसानों ने इस बात का विरोध किया। पहले ही भूमिकर इतना अधिक था कि किसान उसे दे पाने में असमर्थ थे। यह बढ़ा हुआ भूमिकर तो उनके लिए दे पाना बहुत ही कठिन था।

किसानों ने वल्लभभाई के सामने अपनी कष्ट-कथा कही। उन्होंने कहा—"हम सत्याग्रह करेंगे और बढ़ा हुआ लगान किसी तरह नहीं देंगे।" वल्लभभाई ने इस सत्याग्रह में आने वाली विपत्तियों का चित्र उनके सामने अच्छी तरह खींच दिया। उन्होंने कहा—"सरकार तुम्हें कुचलने के लिए अपनी सारी ताकत लगा देगी। तुम्हारे घर का सब सामान सिपाही उठा ले जाएंगे। स्त्रियों और बच्चों को भूखों मरना पड़ेगा। अगर तुम इन सबके लिए तैयार हो, तो सत्याग्रह से सफलता मिल सकती है।" जब किसानों ने कहा, वे ये सब कष्ट सहने को तैयार हैं, तो पटेल ने इस सत्याग्रह का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। इस सत्याग्रह का संगठन और संचालन पटेल ने इतनी कुशलता से किया कि सरकार को कुछ ही समय में घुटने टेक देने पड़े।

इस आन्दोलन में गुजरात से बाहर के कांग्रेसियों ने सहायता देनी चाही। पर सरदार पटेल अपने काम में किसी भी दूसरे व्यक्ति का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते थे, उन्होंने साफ कह दिया कि बाहरी सहायता की कोई आवश्यकता नहीं है। एक बार वल्लभभाई ने अपनी ओर संकेत करते हुए कहा था—"बारडोली में केवल एक ही सरदार है, उसकी आज्ञा का पालन सब लोग करते हैं।" यह बात सच थी, फिर भी कही मजाक में कही गई थी। तब से ही वह 'सरदार' कहलाने लगे।

१९३० ई० में गांधीजी ने दूसरी बार सत्याग्रह-आन्दोलन छेड़ दिया। नमक-कानून तोड़ने के लिए गांधीजी ने 'डांडी-यात्रा' की और उसके बाद देश में सभी जगह नमक-कानून तोड़ा जाने लगा। मोतीलाल नेहरू सत्याग्रह संग्राम के संचालक बनाए गए थे। मोतीलाल जी की गिरफ्तारी के बाद यह भार सरदार पटेल के कन्धों पर डाला गया। पहली अगस्त को लोकमान्य तिलक के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में बम्बई में एक विशाल जलूस निकाला गया था। इस सम्बन्ध में सरकार ने सरदार पटेल को गिरफ्तार कर लिया। उन्हें तीन मास की सजा हुई।

कांग्रेस के अध्यक्ष--सरदार पटेल की सेवाओं का सम्मान करते हुए १९३१ ई० में हुए कांग्रेस के अधिवेशन का अध्यक्ष आपको ही बनाया गया। उससे अगले वर्ष भी वही कांग्रेस के अध्यक्ष रहे।

सरकार ने गांधीजी के सत्याग्रह से घबराकर सन्धि-चर्चा की थी और उसके फलस्वरूप गांधी-इर्विन समझौता हुआ था। परन्तु गोलमेज कान्फ्रेंस की असफलता के बाद सरकार ने फिर दमन प्रारम्भ कर दिया। गांधीजी तथा अन्य प्रमुख नेता जेलों में डाल दिए गए। सरदार पटेल भी गिरफ्तार कर लिए गए। १९३४ ई० के अन्त तक वह जेल में ही रहे। जेल से छूटने के बाद उन्हें 'कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड' का प्रधान बना दिया गया।

१९३७ ई० में नये विधान के अनुसार सभी प्रान्तों में चुनावों में कांग्रेस की सफलता के लिए सरदार पटेल ने बहुत कार्य किया। सारे देश में दौरा करके उन्होंने जगह-जगह भाषण दिए। कांग्रेस की सात प्रान्तों में भारी बहुमत से विजय हुई। इन प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने और उन्होंने शासन में अनेक सुधार किए। पर १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने पर ये मंत्रिमंडल समाप्त हो गए।

भारत के गृहमंत्री--९ अगस्त, १९४२ को बम्बई में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया गया था। उसी रात अन्य प्रमुख नेताओं के साथ-साथ पटेल भी गिरफ्तार कर लिए गए थे। १५ जून, १९४५ तक ये सब नेता जेल में ही रहे। उसके बाद सरकार ने समझौता करने के लिए सब नेताओं को छोड़ दिया। कई महीनें तक कांग्रेस, मुस्लिम लीग और अंग्रेजी सरकार में समझौते की चर्चा चलती रही। अन्त में २ सितम्बर, १९४६ को पहली

बार केन्द्र में जनता की लोकप्रिय सरकार बनी, जिसके प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू थे। उस अन्तरिम सरकार में सरदार पटेल गृह तथा सूचना-विभाग के मन्त्री बने।

उसके बाद देश का विभाजन हो गया। १५ अगस्त, १९४७ को देश पूर्णतया स्वाधीन हो गया। सरदार पटेल नई राष्ट्रीय सरकार में पहले की भांति गृह तथा सूचना-विभाग के मन्त्री रहे। साथ ही उन्हें उप-प्रधान मन्त्री का पद और मिला। देश के विभाजन के समय जो उपद्रव हुए थे, उनमें सरदार पटेल ने अत्यन्त धैर्य और दृढ़ता से काम लिया। इसके फलस्वरूप उपद्रवों की भयंकरता बहुत कुछ कम हो गई। अंग्रेजों और मुस्लिम लीग की बहुत-सी चालें विफल हो गईं।

देशी राज्यों का विलय—अंग्रेजों ने जब भारत को स्वाधीन किया तो उन्होंने देशी राज्यों के साथ हुए अपने सब समझौते और सन्धियां समाप्त कर दीं। ये राज्य अब अपने भविष्य का निर्णय करने में स्वतंत्र थे। जो देशी राज्य अंग्रेजों के समय उनके पिट्ठू बनकर रहने को तैयार थे, वे अब पूर्ण प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य बनने का स्वप्न देखने लगे। केवल भारत में ही इन राज्यों की संख्या ६०० के लगभग थी। यदि सचमुच ही ये राज्य उपद्रव पर उतर आते, तो भारत सरकार के लिए अच्छी मुसीबत बन जाते। परन्तु सरदार पटेल ने उस समय बड़ी कुशलता, दूरदर्शिता और दृढ़ता से काम लिया। इनमें से अनेक छोटे-छोटे राज्यों को तो उन्होंने आस-पास के बड़े राज्यों में मिला दिया और बहुत-से बड़े-बड़े राज्यों को मिलाकर उनके 'ख' श्रेणी के राज्य बना दिए। ये 'ख' श्रेणी के राज्य भी भारतीय संघ के अंग बन गए। इन राज्यों के राजप्रमुख पुराने राजा या नवाब ही बना दिए गए। हैदराबाद में रजाकारों ने बहुत उत्पात मचाया हुआ था। वहां सरदार पटेल ने सेना भेजकर शान्ति स्थापित करवा दी और हैदराबाद भी भारतीय संघ में सम्मिलित हो गया।

यह पटेल के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था, जिसके लिए भारत उनका सदा ऋणी रहेगा। जब तक पटेल जीवित रहे, तब तक भारत सरकार सब विषम समस्याओं का बड़ी निश्चिन्तता के साथ सामना करती रही।

कार्य के आधिक्य के कारण सरदार पटेल का स्वास्थ्य खराब रहने लगा। पर्याप्त विश्राम न मिल पाने के कारण चिकित्सा विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होती थी। आखिर १५ दिसम्बर, १९५० ई० को उनका स्वर्गवास हो गया।

सरदार पटेल शक्ति के पुंज थे। किन्तु उनकी शक्ति तब तक प्रकट नहीं होती थी, जब तक बाधाएं सामने आकर उन्हें चुनौती नहीं देती थीं। किन्तु बाधा या विपत्ति सामने आने पर वह चट्टान की भांति कठोर और अजेय हो जाते थे। मौलाना शौकतअली ने उन्हें एक बार 'बर्फ से ढका हुआ ज्वालामुखी' कहा था। उनके लिए इससे अच्छी दूसरी उपमा ढूंढ़ पाना कठिन है।

१२

शान्ति के अग्रदूत जवाहरलाल नेहरू

इन्द्र विद्यावाचस्पति और डा० कृष्णदत्त भारद्वाज

Asia has come awake and Jawaharlal Nehru is the man chiefly responsible for her unrest.

× × ×

Sincere, disinterested in personal power, Nehru combines the dreamer and the man of action. He loves books and the arts but is equally at home in the rough and tumble.

—Donald Robinson "The 100 Most Important People".

जवाहरलाल जी के पूर्व पुरुष लगभग सवा दो सौ वर्ष पूर्व काश्मीर से आकर दिल्ली में बस गए थे। सन् १८५७ की राज्यक्रांति तक वह परिवार, जो यहां नहर सादतखां के पास रहने के कारण नेहरू कहलाने लगा था, दिल्ली में रहा। शहर कोतवाल पं० गंगाधर ने इसी वंश में जन्म लिया था। जब दिल्ली पर फिर से अंग्रेजी सेना ने अधिकार जमा लिया, तब इस बार-बार बनने और उजड़ने वाले नगर के पुराने निवासी नगर छोड़कर चारों ओर तितर-बितर हो गए। श्री जवाहरलाल के परदादा पं० गंगाधर, जो उन्हीं निवासियों में थे। आगरा जाकर बस गए।

पं० मोतीलाल जी का जन्म १८६१ ईस्वी के मई मास में हुआ। आप वकालत पास करके पहले कानपुर में और फिर इलाहाबाद में प्रैक्टिस करने लगे। पं० मोतीलाल जी के स्वभाव की यह विशेषता थी कि वह जिस कार्य में लगते, उसमें पूरा दिल और पूरा बल लगा देते थे। प्रतिभा

वान थे ही, बहुत शीघ्र वकालत चमक उठी, और ऐसी चमकी कि वे कुछ ही वर्षों में न केवल इलाहाबाद हाईकोर्ट, अपितु सारे देश के मूर्धन्य वकीलों में गिने जाने लगे। कामयाब वकील को कमाई की कमी नहीं रहती। कहा जाता था कि पं० मोतीलाल नेहरू की वकालत की मासिक कमाई औसतन तीस-चालीस सहस्र रुपयों तक पहुंच गई थी। आपने अपने बंगले का नाम 'आनन्द भवन' रखा था। वह सचमुच आनन्द का भवन बन गया था। उसकी विभूति गवर्नर की कोठी की विभूति को मात करती थी।

१४ नवम्बर, १८८९ को मोतीलाल जी के घर में जवाहरलाल जी ने जन्म लिया। आपकी माता का नाम स्वरूपरानी था। ऐसे समृद्ध और सुसंगठित घर में जन्म लेकर यह स्वाभाविक ही था कि जवाहरलाल जी का बचपन दुलार में बीतता। माता के दुलार के साथ-साथ तेजस्वी पिता का अनुशासन भी चल रहा था। एक बार की बात है कि बालक ने अपने पिता की मेज पर दो फाउन्टेन पेन पड़े देखे। उसके पास एक भी पेन नहीं था। प्रतीत होता है, बालक जन्म से ही साम्यवादी विचार लेकर आया था। उसने सर्वथा उचित समझकर एक पेन उठा लिया। पं० मोतीलाल जी को मालूम हुआ तो वह बहुत बिगड़े। उनका बिगड़ना प्रसिद्ध था। उससे घर भर कांप जाता था। खोज की गई तो चोर पकड़ा गया। मोतीलाल जी ने अपने पुत्र को शिक्षा देने के लिए उसे शारीरिक दंड दिया। माता घायल बच्चे को बचाकर ले गई, और उनकी मरहम-पट्टी की गई। सूर्य के समान तेजस्वी पिता के पुत्र को माता की गोद वृक्ष की ठण्डी छाया के समान प्रतीत होती थी। जवाहरलाल जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उन्हें अपनी माता बड़ी ही सुन्दर, अत्यन्त मधुर और दया की मूर्ति प्रतीत होती थी।

१९०५ तक जवाहरलाल जी की शिक्षा घर पर होती रही, उसके पश्चात् उन्हें विलायत भेज दिया गया। वहां जाकर पहले हैरो के प्रसिद्ध हाई स्कूल में और फिर ऑक्सफोर्ड के विश्वविद्यालय में शिक्षा पूर्ण करके वह बैरिस्टरी की तैयारी में लग गए। दो वर्ष उसमें लगे। १९१२ में जवाहरलाल जी बिलकुल अप-टु-डेट बैरिस्टर बनकर अपने देश में वापस आ गए।

विलायत में शिक्षा प्राप्त करने से जवाहरलाल जी के जीवन पर कुछ स्थायी प्रभाव पड़ गए। इंग्लैंड में इतने समय तक रहने से उनके जीवन में नियन्त्रण की वह भावना उत्पन्न हो गई, जो अंग्रेजों की सफलता की कुंजी है। ऊपर से देखने में अंग्रेजों का जीवन स्वच्छन्द प्रतीत होता है परन्तु गहराई में जाकर देखें तो वे राष्ट्रीय नियन्त्रण में बंधे रहते हैं। जवाहरलाल जी के चरित्र में नियन्त्रण की जो अद्भुत प्रवृत्ति दिखाई देती है, उसमें इंग्लैंड की शिक्षा का भी भाग है।

इंग्लैंड में चिरकाल रहने का जवाहरलाल जी के चरित्र पर दूसरा प्रभाव यह पड़ा कि उन दिनों भारत के पराधीनतापूर्ण वातावरण में रहते हुए, शासक-जाति के लिए मन में अनावश्यक आदर-भाव उत्पन्न हो जाया करता था; जवाहरलाल जी ने अंग्रेजों के अति समीप रहकर उनके वास्तविक रूप को देख लिया। उनमें गुण भी थे और दोष भी। फलतः उनके हृदय में से अंग्रेजों के प्रति आतंक की भावना सर्वथा निकल गई।

भारत में वापस आकर जवाहरलालजी ने कुछ वर्षों तक समृद्ध पिता के एकमात्र बैरिस्टर पुत्र का जीवन व्यतीत किया। उनका काम था, कचहरी में घूम आना और शिकार खेल आना। आपकी राजनीति की ओर प्रवृत्ति थी। राजनीति आपकी नस-नस में भरी थी, परन्तु उस समय की प्रचलित राजनीति पर उनका विश्वास नहीं था। होमरूल आन्दोलन ने उन्हें थोड़ा-बहुत अपनी ओर खींचा, परन्तु उसमें भी आपको बातें ही बातें दिखाई दीं। उनके मन में यह प्रश्न रह-रहकर उठता था कि यदि सरकार हमारी उचित मांग को पूरा न करे तो फिर हम क्या करें? हमारे पास कौन-सा उपाय है, जिसका प्रयोग सरकार को झुका सके?

१९१६ के वसन्तपंचमी के दिन दिल्ली में जवाहरलाल जी का शुभ विवाह कमला जी से सम्पन्न हुआ।

१९१९ के प्रारम्भ में भारत की राजनीति ने नये युग में प्रवेश किया। महात्मा गांधी ने रौलट ऐक्टों के विरोध में सत्याग्रह जारी करने की घोषणा की। उसके परिणामस्वरूप देश में जो सनसनीपूर्ण घटनाएं हुईं, उन्होंने देश का रंग ही पलट दिया। जो देशभक्त देश की राजनीति से इस कारण उदासीन रहते थे कि उसमें बातों की मुख्यता और कार्य की

कमी थी, सत्याग्रह के प्रयोग से उनके हृदयों में आशा का संचार हो गया। उन्हें इस प्रश्न का उत्तर मिल गया कि यदि सरकार हमारी मांगों को स्वीकार नहीं करेगी, तो हम उस पर दबाव कैसे डाल सकेंगे। उन्होंने अनुभव किया कि सरकार के दुराग्रह का उचित उत्तर देशवासियों द्वारा सत्याग्रह है। जवाहरलाल जी भी ऐसे ही देशभक्तों में से थे। फलतः उन्होंने भी महात्मा गांधी जी के कदम पर कदम रखते हुए, १९१९ में भारत की राजनीति में प्रवेश किया।

जब जवाहरलाल जी ने सत्याग्रह में भाग लेने का निश्चय किया तो एक अद्भुत बाधा खड़ी हो गई। पं० मोतीलाल जी ऊपर के व्यवहार में चाहे जितने कठोर थे, हृदय में वह अपनी सन्तान से बहुत प्यार करते थे। उस समय जेल एक हौआ था। उसमें जाना मरने से बदतर समझा जाता था। मोतीलाल जी को यह बात बहुत बेढंगी प्रतीत होती थी कि फूलों की सेज पर पला हुआ उनका एकमात्र बेटा जेल चला जाए। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि जवाहरलाल सत्याग्रह में भर्ती होने को तैयार है, तो वे बहुत रुष्ट हो गए और पुत्र को समझाने लगे। जब उससे भी लाभ न हुआ तो महात्मा गांधी को तार देकर इलाहाबाद बुलाकर जवाहरलाल जी को रोकने की प्रार्थना की। महात्मा जी तो भक्त-वत्सल थे ही, उन्होंने जवाहरलाल जी को समझा-बुझाकर उस समय सत्याग्रह में सम्मिलित होने से रोक दिया।

उस समय तो महात्मा जी के बाँध लगाने से पानी की बाढ़ रुक गई, परन्तु बाढ़ कब तक रुक सकती थी! जवाहरलाल जी का हृदय देश की सेवा में कूदने के लिए उतावला हो रहा था। छोटी-छोटी घटना भी उनके उतावलेपन को बढ़ा देती थी। १९२० में आप माता और पत्नी को स्वास्थ्य-सुधार के लिए मसूरी ले गए। वहां आप सेवाय होटल में ठहरे। उसी होटल में अफगान राजदूत भी ठहरा हुआ था। जवाहरलाल जी को वहां रहते एक मास व्यतीत हो चुका था कि एक अंग्रेज अफसर ने आपसे मिलकर यह आश्वासन मांगा कि वह अफगान राजदूत से कोई वास्ता न रखेंगे। जवाहरलाल जी ने सरकार की इस मांग को अपमानजनक माना और आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। सरकार को एक भारतवासी का यह व्यवहार असह्य हो गया, और उसने जवाहरलाल जी को

२४ घण्टों में देहरादून के जिले से निकल जाने की आज्ञा दे दी। जवाहरलाल जी तो नियत समय में देहरादून से चले गए परन्तु इस घटना के देशभर के समाचारपत्रों में छपने पर सरकार पर जो लानत की बौछार पड़ी, उससे सरकार इतनी घबरा गई कि उसे अपना नादिरशाही हुक्म वापस लेकर छुटकारा पाना पड़ा। इस घटना पर पं० मोतीलाल जी ने उस समय संयुक्त प्रांत के गवर्नर सर हरकोर्ट बटलर को ऐसा करारा पत्र लिखा था कि वह भी सटपटा गया।

कुछ समय पीछे अवध के किसानों में जबर्दस्त आन्दोलन आरम्भ हो गया। उसने जवाहरलाल जी को राजनीति में प्रवेश का अभीष्ट अवसर दे दिया। अवध के किसानों की दशा जागीरदारी-प्रथा के कारण बहुत खराब होती जा रही थी। बाबा रामचन्द नाम के एक कर्मठ सज्जन उनकी करुण कहानी लेकर इलाहाबाद आए। वहां उनकी जवाहरलालजी से भेंट हो गई। कहानी सुनकर जवाहरलाल जी का हृदय पसीज गया, और वह अपनी आंखों से किसानों की दशा देखने के लिए बाबा जी के साथ चल पड़े। बस, वह जवाहरलाल जी की उस लम्बी, संघर्षपूर्ण राजनीतिक यात्रा का प्रथम चरण था।

अवध के किसानों में जाकर आन्दोलन में भाग लेने से जवाहरलाल जी के सामने जो एक बांध-सा लगा हुआ था, वह टूट गया। आप निःशंक भाव से देश के राजनीतिक कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हो गए। १९१९ में देश के राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व संभालने के बाद महात्माजी ने जब और जो कार्यक्रम राष्ट्र के सामने रखा, जवाहरलाल जी उसके पूरा करने में सबसे आगे रहने लगे। जानकार लोगों का विचार है कि जवाहरलाल जी की सेना की अगली पंक्ति में खड़े होकर युद्ध करने की प्रवृत्ति का पंडित मोतीलाल जी पर भी प्रभाव पड़ा। पंडित मोतीलाल जी की १९१८ के अन्त तक माडरेट नेताओं में गिनती की जाती थी। पंजाब के मार्शल-ला और जलियांवाला बाग के हत्याकांड ने उन्हें माडरेटों के गिरोह में से निकालकर महात्माजी के पास खड़ा कर दिया। परन्तु पुराने सब राजनीतिक सम्बन्धों को तोड़कर उनके सत्याग्रहियों की सेना के अन्यतम नेता बन जाने का बहुत कुछ श्रेय जवाहरलाल जी को दिया

जा सकता है। ज्यों-ज्यों जवाहरलाल जी शत्रु-सेना की गहराई में घुसते गए, त्यों-त्यों पंडित मोतीलाल जी का कदम भी आगे ही आगे बढ़ता गया। यहां तक कि कुछ वर्षों में पंडित मोतीलाल जी का स्थान देश की राजनीति में महात्माजी के अत्यन्त निकट समझा जाने लगा।

इंग्लैंड के युवराज के भारत आने पर असहयोग के रूप में कांग्रेस ने युवराज के स्वागत का बहिष्कार किया। बहिष्कार में भाग लेने के कारण पिता और पुत्र दोनों नेहरू गिरफ्तार हो गए और लखनऊ की जेल में भेज दिए गए।

जब १९२२ में आप जेल से छूटे, तब देश का राजनीतिक वातावरण ठंडा हो रहा था। उस अवसर से लाभ उठाकर इलाहाबाद के नागरिकों ने पण्डित जवाहरलाल जी को शहर की म्युनिसपैलिटी का चेयरमैन चुन लिया। १९२३ में नाभा-नरेश पर सरकार द्वारा किए गए अत्याचारों का विरोध करने के लिए अकालियों ने जैतो के मोर्चे पर सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था। अपनी आंखों से सारी परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए जवाहरलाल जी वहां जा पहुंचे। और जैतो की ओर जाने वाले एक अकाली जत्थे के पीछे-पीछे सत्याग्रह के थल के समीप पहुंच गए। वहां आपको सरकार की तरफ से हुक्म मिला कि नाके में मत घुसो। उस हुक्म को मानने से इनकार करने पर आपको और आपके अन्य दो साथियों को हथकड़ी-बेड़ी से सजाकर ले जाया गया। जेल में ले जाकर हथकड़ी-बेड़ी तो खोल दी गई परन्तु जो स्थान रहने को दिया गया, वह नरक से भी बदतर था। बदबू और कीड़े-मकोड़ों के कारण रातभर नींद नहीं आई। कई दिनों तक अभियोग का नाटक होता रहा। अन्त में ढाई वर्ष जेल की सजा हुई जो जेल के अन्दर पहुंचने पर नाभा से निर्वासन के रूप में परिणत हो गई और आप सही-सलामत दिल्ली पहुंच गए।

शीघ्र ही सत्याग्रह का एक दूसरा अवसर भी आ गया। उस वर्ष प्रयाग में कुम्भ का स्नान था। अधिक पुण्य संगम पर स्नान करने से माना जाता है। किनारा खराब हो जाने से लोगों के डूब जाने का डर था, इस कारण सरकार ने स्नान के मुख्य स्थान पर लोगों को रोकने के लिए लम्बा-चौड़ा जंगला लगा दिया था। उस पर पंडित मदनमोहन

मालवीय के नेतृत्व में भक्त हिन्दू जनता ने जंगले के सामने धरना दे दिया, अर्थात् रास्ता रोककर बैठ गए। ऐसा सुअवसर पाकर जवाहरलाल जी कहां चूकने वाले थे ! वह भी सत्याग्रही भक्त लोगों में जा बैठे। परन्तु उससे भी उनका जी न भरा। कुछ घंटों के पश्चात् आप रेती में से उठकर जंगले पर चढ़ने लगे। उनको देखादेखी और भी हजारों आदमी जंगले पर चढ़ने का उद्योग करने लगे। जंगले की चोटी पर चढ़कर जवाहरलाल जी ने जेब से एक तिरंगा झण्डा निकाला और बल्ली पर चढ़ा दिया। पुलिस भला उसे कैसे बर्दाश्त करती ? उसने चारों ओर से घेरा डाल दिया। इसपर मालवीय जी भी अपना शान्त धरना छोड़कर घेरे में घुसने का यत्न करने लगे। मामला बढ़ता देखकर पुलिस ने हार मान ली और मैदान मालवीय जी और जवाहरलाल जी के हाथ में छोड़कर वहां से हट गई।

१९२६ में आप अपनी पतिपरायणा पत्नी कमला जी और पुत्री इन्दिरा के साथ यूरोप के भ्रमण को रवाना हो गए। वहां स्विट्जरलैंड, फ्रांस और जर्मनी आदि देशों में घूमते हुए और ब्रूसेल्ज की अधिकारहीन जातियों की कान्फ्रेंस में भाग लेते हुए आप रूस पहुंच गए, जहां पण्डित मोतीलाल जी भी उनके साथ शामिल हो गए। सारे परिवार ने सोवियत सरकार की दसवीं वर्षगांठ में भाग लिया। इस यात्रा से दो लाभ हुए—एक तो कमला जी का गिरता हुआ स्वास्थ्य कुछ सुधर गया और दूसरे आपकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गहरी दिलचस्पी हो गई।

सन् १९२९ के अन्त में लाहौर में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, वह भारत के स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में बहुत ही स्मरणीय रहेगा। उसके अन्तिम दिन, ३१ दिसम्बर की रात के १२ बजे, भारत के सहस्रों प्रतिनिधियों ने हर्षसूचक जयकारों के मध्य में इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया था कि कांग्रेस का लक्ष्य भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है। कई वर्षों से जवाहरलाल जी यह प्रयत्न कर रहे थे कि कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता को माना जाए। परन्तु महात्मा जी और पण्डित मोतीलाल जी औपनिवेशिक स्वराज्य से आगे बढ़ना उचित नहीं समझते थे। इस कारण कांग्रेस रुकी रही। १९२९ के अन्त में जब पानी सिर से भी ऊंचा चला गया तब महात्मा जी भी कांग्रेस का ध्येय बदलने के लिए राजी

हो गए। यह उचित ही हुआ कि जिस अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य माना गया, उसके अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल जी चुने गए थे। अधिवेशन से पहले जो जुलूस निकला, उसमें पण्डित जवाहरलाल जी घोड़े पर चढ़कर सम्मिलित हुए थे। उस अवसर पर लाहौर के निवासियों ने आपका जो शानदार अभिनन्दन किया, उसे देखकर जवाहरलाल जी की माता स्वरूपरानी जी की आंखों में हर्षसूचक अश्रुधारा बह गई थी। माता को ऐसे सुपुत्र पर गर्व होना ही चाहिए।

१९३० के आरम्भ में देश का वातावरण नमक-सत्याग्रह के कारण बहुत गरम हो गया। अगले पांच वर्ष देश में धुआंधार आन्दोलन के थे। उनमें जवाहरलाल जी अधिक समय तक जेल में और थोड़ा समय बाहर रहे। कई बार रिहा हुए और कई बार सजा पाई। पण्डित मोतीलाल जी कुछ वर्षों से बीमार रहने लगे थे। सांस के रोग से तो वह पहले ही पीड़ित थे, कई बार जेल जाने के कारण भी स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा। आयु का भी तकाजा था। फलतः आपके स्वास्थ्य की दशा चिन्ताजनक हो गई। उधर कमला जी का स्वास्थ्य भी निरन्तर गिरता जा रहा था। जब कमला जी की दशा बहुत चिन्ताजनक हो गई तब १९३५ के सितम्बर मास में सरकार ने आपको जेल से मुक्त कर दिया। ४ सितम्बर को आप हवाई जहाज से वियाना के लिए रवाना हो गए। वहां जाकर इलाज से पहले तो कमला जी के स्वास्थ्य में कुछ उन्नति होती दिखाई दी परन्तु रोग बहुत बढ़ चुका था, चिकित्सक उस पर काबू न पा सके और वह देशभक्त, पतिपरायणा वीर रमणी २८ फरवरी, सन् १९३६ के दिन इस लोक के बंधनों से मुक्त होकर उस लोक में चली गई, जहां सती स्त्रियों का उचित स्थान है।

मार्च मास में कमला जी के अवशेष लेकर जवाहरलाल जी अपने देश में वापस आ गए। देशभर में उनके लिए सहानुभूति और आदर-भाव का जो दरिया उमड़ रहा था, वह इस रूप में प्रकट हुआ कि आप दूसरी बार सर्व-सम्मति के कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में १९३६ के अप्रैल मास में हुआ। इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव स्वीकार किए गए, उन पर जवाहरलाल जी के व्यक्तित्व का रंग चढ़ा हुआ

था। आप यूरोप से साम्यवाद का संदेश लेकर आए थे। यद्यपि वह संदेश लखनऊ के प्रस्तावों में ओतप्रोत नहीं हो सका तो भी उसकी झलक अवश्य आ गई थी। अधिवेशन के बाद आप आराम से नहीं बैठे। सालभर देश में निरन्तर तूफानी दौरा करते रहे। आपके दौरों के साथ तूफानी शब्द भी तभी से लगना आरम्भ हुआ है। एक-एक दिन में मोटर पर डेढ़-डेढ़ सौ मील की दौड़ और बारह-बारह व्याख्यान—इस दृश्य को देखकर विदेशी पत्रों के संवाददाता भी आश्चर्यचकित हो गए थे।

वर्षभर में पंडित जवाहरलाल जी ने देश को इतना जगा दिया था कि जब वर्ष के अन्त में यह प्रश्न उठा कि कांग्रेस के आगामी अधिवेशन का अध्यक्ष किसे चुना जाए, तो देशवासियों को नेहरू जी के सिवाय और कोई नाम नहीं सूझा। और फैजपुर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के लिए नेहरू जी तीसरी बार अध्यक्ष चुने गए। तीसरी बार कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने का सौभाग्य पहले-पहल आपको ही प्राप्त हुआ।

१९३७ में धारासभाओं के चुनाव हुए। कांग्रेस ने भी उसमें भाग लिया। चुनाव में कांग्रेस को जो सफलता मिली, उसका बहुत बड़ा श्रेय पंडित जवाहरलाल जी को ही था। उनके तूफानी दौरों ने जनता में इतनी जाग्रति पैदा कर दी थी कि कांग्रेस के विरोधियों के हथकंडे कामयाब न हो सके और आठ बड़े प्रान्तों की धारासभाओं में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हो गया।

चुनाव हो जाने के अनन्तर फैजपुर के निश्चय के अनुसार मार्च के मध्य में दिल्ली में नेशनल कन्वेन्शन का अधिवेशन हुआ। उसका अध्यक्ष-पद भी पंडित जवाहरलाल जी को ही प्राप्त हुआ। कन्वेन्शन में कांग्रेसियों की धारा-सम्बन्धी नीति का निर्णय किया गया।

१९४१ के अन्त में युद्ध ने नई करवट ली। जापान लड़ाई में कूद पड़ा, जिससे घबराकर अंग्रेजी सरकार ने आवश्यक समझा कि किसी तरह भारतवासियों को संतुष्ट करके युद्ध में अपना सहायक बनाया जाए। उस समय मौलाना आजाद कांग्रेस के अध्यक्ष थे और पंडित जवाहरलाल जी राष्ट्र के नेता। दोनों को तथा धीरे-धीरे अन्य नेताओं को भी जेल से रिहा करके सरकार ने कांग्रेस से बातचीत का सिलसिला शुरू कर दिया।

इस बातचीत के अवसर पर महात्मा जी की इस घोषणा ने देश और विदेश में एक नई हलचल उत्पन्न कर दी कि मेरा उत्तराधिकारी जवाहरलाल को समझा जाए। सरकार को बरबस उस आदमी से सलाह-मशविरा करने के लिए बाध्य होना पड़ा, जो उनकी सम्मति में विद्रोहियों का सरगना था।

सरकार ने भारतवासियों को संतुष्ट करने के लिए सर स्टेफर्ड क्रिप्स नाम के एक राजनीतिज्ञ को भारत में भेजा, जो अपनी पिटारी में 'क्रिप्स स्कीम' नाम की ऐसी योजना को लेकर आया था, जिसे अंग्रेज लोग जादू की छड़ी समझते थे। परन्तु वह योजना साधारण छड़ी से भी कम प्रभावशाली निकली, क्योंकि वह नेताओं के सामने विचार के लिए आते ही टूट गई और क्रिप्स साहब को अपना-सा मुंह लेकर उल्टे पांव विलायत लौट जाना पड़ा।

इन्हीं विचार-विमर्शों में १९४२ का मध्य आ गया। सरकार का जादू टूट चुका था, और देश उतावला हो रहा था। ८ अगस्त को बम्बई में राष्ट्रीय महासमिति का जो अधिवेशन हुआ, उसमें अंग्रेजों के वायदों से थके हुए, और स्वाधीन होने के दृढ़-संकल्प सदस्यों ने महात्मा गांधी के आदेश पर वह क्रांतिकारी प्रस्ताव जयघोष से स्वीकार किया जो 'भारत छोड़ो' के नाम से प्रसिद्ध है। उस प्रस्ताव द्वारा भारतवासियों ने अंग्रेजों को ललकार कर कह दिया था कि अब भारतवासी स्वतन्त्र होने पर तुल गए हैं, उन्हें अंग्रेजों के वायदों पर रत्तीभर भी विश्वास नहीं रहा। इस कारण भलाई इसी में है कि अंग्रेज अब अपना बोरिया-बिस्तर बांधकर भारत से विदा हो जायें।

दोपहर बाद यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ और रात समाप्त होने से पहले महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौ० आजाद आदि सब नेता गिरफ्तार करके कारागारों में बन्द कर दिए गए।

अगले तीन वर्षों को हम अंधकारमय कह सकते हैं। नेता लोग जेल में थे। अनेक कार्यकर्त्ता अपनी-अपनी रुचि के अनुसार गुप्त रूप से आतंकमयी प्रवृत्तियों में लगे हुए थे, और सरकार हर तरह से क्रूर कठोर हो गई थी। परिस्थिति ने पलटा खाया और युद्ध समाप्त हो गया। इंग्लैंड की ओर से बार-बार यह घोषणा की गई थी कि युद्ध समाप्त होने

पर भारत को स्वराज्य दिया जाएगा। उस वायदे को पूरा करने के लिए १९४५ के प्रारम्भ में लार्ड वेवल को वायसराय के पद पर नियुक्त करके भारत में भेजा गया। उसके आने पर पहले कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य और फिर धीरे-धीरे अन्य राष्ट्रीय नेता भी जेलों से मुक्त कर दिए गए। जवाहरलाल जी मुक्त होने वालों में सर्वप्रथम थे।

लार्ड वेवल की भारत के नेताओं से बातचीत कई महीनों तक चलती रही। मि० जिन्ना ने भारत के टुकड़े करके पाकिस्तान बनाने के मामले पर अड़कर पहले तो बातचीत को असफल बना दिया, परन्तु अन्त में लार्ड वेवल के के धैर्य और राष्ट्र के नेताओं की दूरदर्शिता कामयाब हो गई। जब तक स्वाधीन भारत का अन्तिम रूप तैयार न हो, तब तक एक अन्तरिम अस्थायी सरकार बना दी गई, जिसमें नेहरू जी का पद सदस्यों में सबसे ऊंचा था। आप कौंसिल के वाइस-प्रेसीडेंट होने के अतिरिक्त विदेशी मामलों के सचिव भी नियत किए गए। १९४७ में भारत का स्वाधीन शासन बनने पर आप देश के सर्वप्रथम प्रधान मंत्री बनाये गये।

साहित्य-संसार में भी नेहरू जी का बहुत सम्मान था। आपकी लिखी पुस्तकों में से 'मेरी कहानी', 'विश्व इतिहास की झलक', 'पुत्री के नाम पिता के पत्र', 'हिन्दुस्तान की कहानी' आदि न केवल देश में, बल्कि विदेशों में भी बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। विद्वत्ता के उपलक्ष्य में आपको पटना, दिल्ली आदि विश्वविद्यालयों से एल० एल० डी० की उपाधि मिली। दक्षिण एशिया के देशों की 'कोलम्बो कान्फ्रेंस' के नेता की हैसियत से आपको अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ। उस विश्व-व्यापी आदर का प्रदर्शन उन दो विदेश-यात्राओं में भली प्रकार से हुआ, जो उन्होंने रूस और अमेरिका में भारत के प्रधान मंत्री की हैसियत से कीं। वहां की सरकारों के निमन्त्रण पर १९५३ में आप अमेरिका और कनाडा गए, और १९५५ में रूस, जर्मनी, इटली, यूगोस्लाविया आदि देशों का भ्रमण किया। उन सब देशों में उनका जो शानदार शाही स्वागत और सत्कार हुआ, वह इसका प्रमाण है कि दुनिया भी उनके व्यक्तित्व की उत्कृष्टता और आदर्शों की सत्यता को स्वीकार करती है। इसी वर्ष नेहरूजी को भारत-रत्न की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् १९५६ में चीन के प्रधान मंत्री चाऊ-एन-लाई का भारत में स्वागत हुआ और दो महान् देशों के प्रधान मंत्रियों ने मंत्रणा की। भारत ने अपनी परम्परा के अनुसार चीनी हिन्दी भाई-भाई का उद्घोष किया किन्तु चीन भीतर ही भीतर भारत के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करता रहा।

सन् १९६२ में चीन ने सहसा भारत पर आक्रमण कर दिया। पं० नेहरू के हृदय पर आघात पहुंचा और उनका स्वास्थ्य अत्यधिक कार्य करने के कारण बिगड़ता ही गया।

२७ मई, सन् १९६४ को भारतीयों पर वज्रपात हुआ और लोगों के हृदय-सम्राट् जवाहर चल बसे। भुवनेश्वर के कांग्रेस-अधिवेशन में उन पर लकवे का आक्रमण हुआ था। देहरादून में अवकाश बिताकर वे दिल्ली लौटे ही थे कि अगले ही दिन प्रातः ६-२० पर वे अस्वस्थ हुए और अपरान्ह में २-१० पर महाप्रयाण कर गए। जवाहरलाल ने रवीन्द्र ठाकुर की निम्नलिखित कविता के आदर्श पर अपना जीवन बिताया। उनमें भय का लेश नहीं और उनके मन में संकीर्णता के लिए स्थान नहीं। रवीन्द्र बाबू गीतांजलि में लिखते हैं--

जहां निडर मन शिर ऊंचा हो, बिना बन्ध मिलता हो ज्ञान।
जहां तंग दीवारें टुकड़े-टुकड़े करें न विश्व महान।
जहां सत्य की गहराई से शब्द निकलने प्यारे हों।
जहां पृथक् उद्योग पूर्णता की दिशि बांह पसारे हो।
जहां सदा विस्तीर्ण विचारों और कर्म में मन रत हो।
हे पितु उसी स्वतन्त्र स्वर्ग में जगता प्यारा भारत हो।

जवाहरलाल जी के जीवन का यही आदर्श भारत था जिसके लिए वह जीवन भर प्रयत्न करते रहे।

जवाहरलाल नेहरू की वसीयत

मुझे मेरे देश की जनता ने, मेरे हिन्दुस्तानी भाइयों और बहनों ने, इत्ता प्रेम और इत्ती मुहब्बत दी है कि चाहे मैं जित्ता कुछ करूँ, वो उसके एक छोटे से छोटे हिस्से का बदला नहीं हो सकता। सच तो यह है कि प्रेम इत्ती कीमती चीज है कि इसके बदले कुछ देना मुमकिन नहीं है। इस दुनियां में बहुत से लोग हुए जिनको अच्छा समझ कर, बड़ा मान कर, उनका आदर किया गया, पूजा गया···लेकिन भारत के लोगों ने, छोटे और बड़े, अमीर और गरीब, सब तबकों के बहनों और भाइयों ने मुझे इत्ता ज्यादा प्यार किया कि जिसका बयान करना मेरे लिए मुश्किल है और जिससे मैं दब गया। मैं आशा करता हूँ कि मैं अपने जीवन के बाकी वर्षों में अपने देशवासियों की सेवा करता रहूँ और उनके प्रेम के योग्य हूँ।

बेशुमार दोस्तों और साथियों के मेरे ऊपर और भी ज्यादा एहसानात । हम बड़े-बड़े कामों में एक-दूसरे के साथ रहे, शरीक रहे, उन्हें मिल-कर के किया है। यह तो होता ही है कि जब बड़े काम किए जाते हैं, उनमें सफलता भी होती है, नाकामयाबी भी होती है। मगर हम सब शरीक रहे सफलता की खुशी में और नाकामयाबी के दुःख में भी······

मैं चाहता हूँ और मन से चाहता हूँ, कि मेरे मरने के बाद कोई धार्मिक रस्में न अदा की जाएँ। मैं ऐसी बातों को मानता नहीं हूँ और सिर्फ रस्म समझ कर इनमें बँध जाना धोखे में पड़ना मानता हूँ। जब मैं मर जाऊँ तो मेरी इच्छा है कि मेरा दाह संस्कार कर दिया जाए। अगर विदेश में मैं मरूँ, तो मेरे शरीर को वहीं जला दिया जाए, और मेरी अस्थियाँ इलाहाबाद भेज दी जाएं, इनमें से मुट्ठी भर गंगा में डाल दी जाएँ, और उनके बड़े हिस्से के साथ क्या किया जाए, मैं आगे बता रहा हूं। इनका कुछ भी हिस्सा किसी हालत में बचा कर न रखा जाए।

गंगा में अस्थियों का कुछ हिस्सा डलवाने की इच्छा के पीछे, जहाँ तक मेरा ताल्लुक है, कोई धार्मिक खयाल नहीं है। इस बारे में मेरी कोई धार्मिक भावना नहीं है। मुझे बचपन से गंगा और यमुना से लगाव रहा है। और जैसे-जैसे मैं बड़ा हुआ, यह लगाव बढ़ता रहा। मैंने मौसमों के बदलने के साथ इनके बदलते हुए रंग और रूप को देखा है, और कई बार मुझे याद आई उस इतिहास की, उन परम्पराओं की, पौराणिक गाथाओं की, उन गीतों और कहानियों की, जो कि कई युगों से उनके साथ जुड़ गई हैं और उनके बहते हुए पानी में घुल-मिल गई हैं। गंगा तो विशेषकर भारत की नदी है, जनता की प्रिय है, जिससे लिपटी हुई हैं भारत की जातीय स्मृतियां, उसकी आशायें और उसके भय, उसके विजय-गान, उसकी विजय और पराजय। गंगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता की प्रतीक रही है, निशान रही है, सदा बदलती, सदा बहती, फिर वही गंगा की गंगा। वह मुझे याद दिलाती है हिमालय की बर्फ से ढकी चोटियों की और गहरी घाटियों की, जिनसे मुझे मुहब्बत रही है, और उनके नीचे के उपजाऊ और दूर-दूर तक फैले मैदान जहाँ, काम करते मेरी जिन्दगी गुजरी है। मैंने सुबह की रोशनी में गंगा को मुस्कराते, उछलते-कूदते देखा है, और देखा है, शाम के साये में उदास, काली सी चादर ओढ़े हुए, भेद भरी, जाड़ों में सिमटी सी आहिस्ते-आहिस्ते बहती सुन्दर धारा, और बरसात में दहाड़ती, गरजती हुई, समुद्र की तरह चौड़ा सीना लिए, और सागर को बरबाद करने की शक्ति लिए हुए। यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की, यादगार की, जो बहती आई है वर्तमान तक और बहती चली जा रही है भविष्य के महासागर की ओर। भले ही मैंने पुरानी परम्पराओं, रीति और रस्मों को छोड़ दिया हो, और मैं चाहता भी हूँ कि हिन्दुस्तान इन सब जंजीरों को तोड़ दे जिनमें वह जकड़ा है, जो उसको आगे बढ़ने से रोकती हैं और जो देश में रहने वालों में फूट डालती हैं, जो बेशुमार लोगों को दबाए रखती हैं और जो शरीर और आत्मा के विकास को रोकती हैं। चाहे यह सब मैं चाहता हूँ, फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपने को इन पुरानी बातों से बिलकुल अलग कर लूं। मुझे फख्र है इस शानदार उत्तराधिकार का, इस विरासत का जो हमारी रही है और हमारी है,

और मुझे यह भी अच्छी तरह से मालूम है कि मैं भी, हम सभों की तरह, इस जंजीर की एक कड़ी हूँ जो कि कभी नहीं और कहीं नहीं टूटी है और जिसका सिलसिला हिन्दुस्तान के अतीत इतिहास के आरम्भ से चला आता है। यह सिलसिला मैं कभी नहीं तोड़ सकता, क्योंकि मैं उसकी बेहद कद्र करता हूँ, और इससे मुझे प्रेरणा, हिम्मत और हौसला मिलता है। मेरी इस आकांक्षा की पुष्टि के लिए और भारत की संस्कृति को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए, मैं यह दरख्वास्त करता हूँ कि मेरी भस्म की एक मुट्ठी इलाहाबाद के पास गंगा में डाल दी जाए, जिससे कि वह उस महासागर में पहुँचे जो हिन्दुस्तान को घेरे हुए है।

मेरी भस्म के बाकी हिस्से का क्या किया जाए । मैं चाहता हूँ कि इसे हवाई जहाज में ऊँचाई पर ले जाकर बिखेर दिया जाए उन खेतों पर, जहाँ भारत के किसान मेहनत करते हैं ताकि वह भारत की मिट्टी में मिल जाए और उसी का अंग बन जाए।

२१ जून, १९५४

जवाहरलाल नेहरू

१३

लालबहादुर शास्त्री

चन्द्रावती लखनपाल और सम्पादक

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विदेशी सत्ता का प्रभाव दो रूपों में पड़ रहा था। एक तो भारत का धन विदेश जाने से देश निरन्तर निर्धन होता जा रहा था और दूसरे विदेशी भाषा और विलायती रहन-सहन के प्रति मोह बढ़ता जा रहा था। ऐसे समय में कतिपय ऐसे देशभक्त पैदा हुए जिन्होंने जनता को इन दुष्प्रभावों से बचाने का प्रयत्न किया। लालबहादुर शास्त्री का ऐसे नेताओं में मुख्य स्थान है।

शास्त्री जी का जन्म २ अक्टूबर, सन् १९०३ ई० में काशी के निकट मुगलसराय में एक निर्धन परिवार में हुआ था। इनके पिता शारदा प्रसाद जी का स्वर्गवास शास्त्रीजी के बाल्यकाल में ही हो गया। इनकी माता श्रीमती रामदुलारी देवी ने शास्त्री जी का पालन-पोषण किया। प्रारम्भ में शास्त्री जी गांव के स्कूल में भर्ती किए गए। तदुपरान्त हरिश्चन्द्र हाई स्कूल में अध्ययन प्रारम्भ किया। उसी समय शास्त्री जी पं० निष्कामेश्वर मिश्र एवं पं० रामनारायण मिश्र नामक दो निष्ठावान् अध्यापकों के सम्पर्क में आए। इनके सहपाठी पं० श्रीनारायण तिवारी शास्त्री जी के बाल्यकाल की जो घटनाएं सुनाते हैं उनसे शास्त्री जी की निर्धनता और उनके आत्म-विश्वास का अनुमान लगाया जा सकता है।

कक्षा में शास्त्री जी प्रायः मौन रहते और अपने गुरुओं का बहुत सम्मान करते थे। अपनी आर्थिक कठिनाइयों का किसी पर आभास न पड़ने देते। कभी-कभी तो पास में पैसा न होने से उन्हें उपवास भी करना पड़ता था। पर सारी व्यथा वह गम्भीरता से सहन कर लेते थे। देश में दरिद्रता का तांडव हो रहा था। न कहीं नौकरी मिलती थी और न व्यापार ही था जिससे कुछ काम मिल सके।

शास्त्री जी हाई स्कूल की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे कि गांधीजी की अहिंसा का बिगुल बजा। अपनी आर्थिक कठिनाइयों की बिना परवाह किए शास्त्री जी असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। उसी समय बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने काशी विद्यापीठ की स्थापना की। शास्त्री जी इसी विद्यापीठ में प्रविष्ट होकर अध्ययन के साथ चर्खा-करघा का प्रचार करने लगे। उनके एक सहपाठी ने अपनी दूकान में इन्हें कुछ कार्य दे दिया। अपराह्न में अध्ययन के उपरान्त शास्त्री जी उनकी खादी की दूकान पर बैठते और इस प्रकार अपनी वृद्धा माता तथा परिवार के अन्य लोगों का पालन करते।

विद्यापीठ की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होकर शास्त्री जी सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने लगे। अब उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र काशी से हटा कर प्रयाग बना लिया। प्रयाग में शास्त्री जी नेहरू परिवार के सम्पर्क में आए। पंडित जवाहरलाल जी उन दिनों इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के अध्यक्ष थे। शास्त्री जी भी नगरपालिका के सदस्य हो गए। शास्त्री जी सात वर्ष तक प्रयाग नगरपालिका के सदस्य बने रहे और चार वर्ष तक इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के मेम्बर रहे। सन् १९३० से ३५ तक इलाहाबाद ज़िला कांग्रेस कमेटी के मंत्री अथवा अध्यक्ष के रूप में जनता की सेवा और कांग्रेस का कार्य करते रहे। सन् १९३७ में चुनाव का आन्दोलन चला। उन दिनों शास्त्री जी उत्तर प्रदेश में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री चुने गए। पं० जवाहरलाल के आग्रह पर धारासभा के लिए चुनाव लड़ने को प्रस्तुत हुए और चुनाव में विजयी हुए। सन् १९३७ से पूर्व शास्त्री जी दो बार जेल यात्रा कर चुके थे। जनता इनकी सत्यनिष्ठा और इनके देश-प्रेम से परिचित थी। इस कारण इन्हें दायित्व प्रदान करने में सबको प्रसन्नता होती थी। विदेशी सरकार इन्हें अत्यधिक जनप्रिय देखकर घबरा उठी और सन् १९४१ में इन्हें पुनः बन्दी बना लिया गया। बन्दीगृह से मुक्त होते ही सन् ४२ का 'भारत छोड़ो' नामक आन्दोलन छिड़ गया। शास्त्री जी को पुनः बन्दी बना लिया गया। इस बार तीन वर्ष तक इन्हें बन्दीगृह में बन्द रखा गया।

शास्त्री जी की जेल यात्रा से उनके परिवार की आर्थिक स्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। लोगों का अनुमान है कि शास्त्री

जी के मित्र किसी न किसी प्रकार उनके परिवार को निर्वाह के लिए थोड़ी बहुत सहायता पहुंचाया करते थे। पर शास्त्री जी ने कभी किसी से अपनी सहायता के लिए अभ्यर्थना नहीं की। शास्त्री जी का यह स्वाभिमान अन्त तक बना रहा। वह जिस प्रकार पारिवारिक संकटों को धैर्यपूर्वक सहते रहे उसी प्रकार राष्ट्र पर आई हुई विपत्तियों का उन्होंने अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी डटकर मुकाबला किया।

सन् १९४६ ई० में देश में फिर चुनाव का आन्दोलन छिड़ा। शास्त्री जी उत्तर प्रदेश की निर्वाचन समिति के सदस्य चुन लिए गए। चुनाव में कांग्रेस की विजय हुई। किन्तु विजय के उपरान्त पदलोभ के कारण फूट पड़ने लगी। सन् १९५१ ई० में कांग्रेस के संगठन में शिथिलता आ गई। इस समय सभी नेताओं की दृष्टि लालबहादुर शास्त्री की ओर गई। शास्त्री जी कांग्रेस-संगठन के कार्य में जुट गए। सन् १९५१-५२ में संविधान के अनुसार भारत में प्रथम चुनाव हुआ। शास्त्री जी ने इस चुनाव को सफल बनाने के लिए नित्य १८–२० घंटे कठोर परिश्रम किया। शास्त्री जी उत्तर प्रदेश की विधान सभा के लिए निर्वाचित हुए। केन्द्र में प्रथम बार निर्वाचित मंत्रिमंडल निर्मित हुआ। शास्त्री जी को विधान सभा त्यागनी पड़ी और वह राज्य सभा के सदस्य चुने गए। शास्त्री जी को केन्द्रीय रेल एवं परिवहन मंत्री बनाया गया। जनता की सुविधा के लिए उन्होंने जनता एक्सप्रेस चलाई जो आज तक शास्त्री जी की सेवाओं का स्मरण दिलाती है। रेल विभाग में अनेक सुधार किए गए।

दक्षिण भारत में अड़ियालूर रेल दुर्घटना में ११४ व्यक्ति मारे गए। इसका दायित्व अपने ऊपर लेकर शास्त्री जी ने मंत्रिपद से त्यागपत्र दे दिया। शास्त्री जी के इस त्याग से उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और वे जनता के प्रिय नेता बन गए। सन् १९५६–५७ में द्वितीय आम चुनाव की तैयारियां होने लगीं। शास्त्री जी पर सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधियों के चुनने का दायित्व सौंपा गया। शास्त्री जी ने जिस न्यायप्रियता और सदाशयता से यह कार्य सम्पन्न किया वह आज तक अनुकरणीय बना हुआ है। शास्त्री जी स्वयं इलाहाबाद नगर से लोकसभा के लिए विशाल बहुमत से निर्वाचित हुए। शास्त्री जी को पहले संचार और परिवहन मंत्री बनाया गया पर

टी० टी० कृष्णमाचारी के त्यागपत्र दे देने पर मंत्रिमंडल का पुनर्गठन हुआ और शास्त्री जी उद्योग एवं वाणिज्य विभाग के मंत्री बनाए गए। इनकी सूझबूझ से निर्यात में वृद्धि हुई और कुटीर उद्योग का भी विकास हुआ।

मंत्रिपद पर रहते हुए शास्त्री जी ने कांग्रेस संगठन में जो योगदान किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। केरल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के कांग्रेस संगठनों को छिन्न-भिन्न होने से इन्होंने बचाया। शास्त्री जी का सबसे बड़ा गुण उनका सौजन्य और उनकी ईमानदारी थी। जो भी उनसे एक बार मिलता वह सन्तुष्ट होकर लौटता। जब-जब त्यागपत्र की आवश्यकता पड़ी शास्त्री जी सब से आगे रहे। कामराज़ योजना में इन्होंने मंत्रिपद त्याग दिया किन्तु भुवनेश्वर काँग्रेस अधिवेशन में पं० जवाहरलाल के अस्वस्थ होने पर शास्त्री जी पुनः विभाग रहित मंत्री बनाए गए।

सन् १९६४ ई० में नेहरू जी के निधन के उपरान्त शास्त्री जी सर्व-सम्मति से प्रधान मंत्री बनाए गए। सन् १९६५ ई० में पाकिस्तान ने भारत के साथ युद्ध छेड़ दिया। शास्त्री जी की दूरदर्शिता से देश विजयी हुआ। प्रथम बार भारतीय सेना ने स्वतंत्र भारत में शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। सम्पूर्ण देश में आत्मविश्वास की लहर दौड़ पड़ी। पाकिस्तान का दर्प आहत हुआ।

शास्त्री जी को रूस के प्रधान मंत्री ने समझौते के लिए आमंत्रित किया। सन् १९६६ के फरवरी महीने में ताशकन्द का समझौता सम्पन्न करके शास्त्री जी ने विदेश में ही चिर विश्राम लिया। उनका स्वर्गवास होने से देश में भीषण हाहाकार मचा। शास्त्री जी का शव ताशकन्द से भारत लाया गया और दिल्ली के विजयघाट पर उसका अन्तिम संस्कार किया गया। इस प्रकार शास्त्री जी काशी के समीप मुग़लसराय में पैदा हुए। काशी में अध्ययन किया। प्रयाग इनका निर्वाचन-क्षेत्र रहा। लखनऊ-दिल्ली में मंत्रिपद पर काम करते रहे, युद्धकाल में सबकी दृष्टि शास्त्री जी पर रही। पाकिस्तान पर विजय प्राप्त करने से शास्त्री जी विजयी नेता के रूप में प्रख्यात हुए। आजीवन देश को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास करते हुए इस नेता ने अन्तिम सांस ली और कोटि-कोटि व्यक्तियों के अश्रुजल से श्रद्धांजलि प्राप्त की।

शास्त्री जी के जीवन की अनेक विशेषताएँ हैं। उनके व्यक्तित्व की गरिमा थी कि जो भी एक बार उनके सम्पर्क में आया वह अपना बन गया। शत्रु की आधी शक्ति इनके सौजन्य से इनकी सहायक बन जाती थी। यह एक प्रकार से ईश्वर का इन्हें वरदान था। शास्त्रीजी परायों के लिए भी अपने थे। चन्द्रावती लखनपाल ने अपने एक संस्मरण में एक घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

परायों के लिए भी अपने से—

बात १९५५ की है। हम लोगों ने देहरादून में डांडा-लखौत के गांवों में पास की पहाड़ी के एक चश्मे से पानी लाकर एक टकी बनाई थी जिससे उन गांवों को पानी पहुँचाने के लिए सारे गांवों में नलके लगा दिए गए थे। मैं तब जिले में भारत-सेवक समाज की संयोजिका थी, और डांडा-लखौत जल-योजना के सम्पन्न हो जाने पर अन्य नेताओं की तरह शास्त्री जी को भी निमन्त्रित कर इस योजना से परिचित कराने की कार्यकर्त्ताओं की इच्छा थी। इधर देहरादून के नेहरू-ग्राम के कार्यकर्त्ता भी मेरे पीछे पड़े हुए थे कि किसी तरह शास्त्री जी को बुलाकर आस-पास के ग्रामवासियों की एक बड़ी कान्फ्रेंस की जाय। लोग यह समझते हैं कि जो पार्लियामेण्ट का सदस्य हो उसका परिचय मिनिस्टरों से होता ही है, और यह भी समझते हैं कि मिनिस्टर लोग मेम्बरों की बात प्रायः टालते नहीं। मैं जब कहती कि मेरा किसी मिनिस्टर से ऐसा परिचय नहीं है कि मेरे कहने पर वह गांवों की खाक छानने के लिए तैयार हो जाय, तब उन्हें विश्वास नहीं आता था। इसके अतिरिक्त शास्त्री जी से मैं कभी पहले मिली न थी—इसलिए मुझे इस बात का संकोच तो था ही, सन्देह भी था कि वे हाँ करेंगे या सीधा इनकार कर देंगे। 'हाँ' कर दिया तो ठीक, इनकार कर दिया तो हमारे कार्यकर्त्ताओं का उत्साह मन्द पड़ जायगा। फिर भी मैंने सबका आग्रह देखकर शास्त्री जी से बात करने का निश्चय कर लिया।

मैंने जब शास्त्री जी से उक्त कान्फ्रेंस में चलने के लिए बात की तो ऐसा लगा जैसे मैं उन्हें न जानती हुई भी जानती हूँ, उनसे अपरिचित

होती हुई भी परिचित हूं। मुझे अपनी बात को दो बार कहने की जरूरत ही न पड़ी। मैंने कहा कि देहरादून एक पहाड़ी इलाका है। वहां गांवों के लोगों को पीने के पानी की बड़ी दिक्कत रहती है, पांच-पांच मील से पीने का पानी ढोना पड़ता है। हर परिवार में एक आदमी का काम तो सिर्फ पानी भरना ही रहता है--इस दिक्कत को हमने भारत-सेवक समाज के संगठन द्वारा कुछ गांवों में दूर करने का प्रयत्न किया है, यह सब हम आपको दिखलाना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त वहां एक नेहरू-ग्राम है, वहां भी पानी को बड़ी कठिनाई है, वहां के लोग एक कान्फ्रेंस करके आप पर यह दबाव डालना चाहते हैं कि आप रेलवे के पाइप से उन्हें पीने का पानी दें। शास्त्री जी एकदम खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले कि ऐसा दबाव डलवाने के लिए आप मुझे ले जाना चाहती हैं। और झट-से चलने के लिए तैयार हो गये। उस समय जबानी तौर पर कोई तारीख भी तय हुई। मैंने देहरादून लौटकर कुछ चिट्ठी-पत्री भी की, परन्तु शास्त्री जी दौरे पर चले गये, किसी पत्र का कोई उत्तर नहीं आया। मैंने भी सोचा कि अब शास्त्री जी क्या आयेंगे। कान्फ्रेंस के थोड़े ही दिन रह गये थे, अतः हमने भी उसे स्थगित कर दिया। इतने में एक दिन अचानक मुझे शास्त्री जी का ट्रंक-काल आया कि मैं बाहर गया हुआ था, अब वापस आया हूं और आपकी कान्फ्रेंस में आ रहा हूं। हम लोग तो उत्तर न मिलने के कारण सब काम स्थगित कर चुके थे, मैंने शास्त्री जी से कहा कि कान्फ्रेंस तो आपसे कुछ निश्चित सूचना न मिल सकने के कारण दिसम्बर तक के लिये स्थगित कर दी है। हम सोचने लगे शायद यह ठीक नहीं हुआ, अब शास्त्री जी को दिसम्बर में देहरादून लाना मुश्किल हो जायगा।

दिसम्बर आया और शास्त्री जी निश्चित समय पर देहरादून पहुंच गये। उनके साथ रेलवे के उत्तरी जोन के जनरल मैनेजर श्री महेन्द्र कृष्ण कौल थे। श्री कौल को शास्त्री जी साथ क्यों लाये थे ? असल बात यह थी कि नेहरू-ग्राम के पास से रेलवे का पानी का एक बड़ा नल देहरादून स्टेशन को जाता है। गांव वाले इस नल से पानी लेना चाहते थे। शास्त्री जी जानते थे कि चिट्ठी-पत्री से तो सालों में भी यह मसला तय होने वाला नहीं था। इसलिए जिस व्यक्ति के द्वारा इस समस्या का अन्तिम

समाधान होना था उसे वे अपने साथ ही ले आये। शास्त्री जी ने कान्फ्रेंस में भाषण देते हुए कहा कि "जो सरकार जनता को पानी तक नहीं दे सकती उसे रहने का कोई अधिकार नहीं। आपकी मांग ऐसी है जिसे कोई टाल नहीं सकता। प्रबन्ध की अगर कोई कठिनाई हो तो उसे दूर करना होगा।" गांववासी तो यह सोच रहे थे कि वे शास्त्री जी पर द्रबाव डालेंगे, परन्तु शास्त्री जी ने जब रेलवे के उच्चतम अधिकारी को गांववालों के सामने लाकर उन दोनों का आमना-सामना करा दिया और इन दोनों को मिलकर समस्या का समाधान करने को कहा तो शास्त्री जी पर दबाव पड़ने के स्थान पर गांववालों पर ही दबाव पड़ गया। उस समय भी मैंने यह अनुभव किया कि शास्त्री जी अपरिचित होते हुए मेरे लिए ही परिचित सरीखे नहीं, हर-एक गांववासी के लिए भी वे अपरिचित होते हुए परिचित-सरीखे थे।

उस दिन दिन-भर मुझे शास्त्री जी के साथ रहने का मौका मिला। मिनिस्टर लोग प्रायः सरकिट हाउस में रहते हैं। हमें भी उम्मीद थी कि शास्त्री जी भी सरकिट हाउस में ही रहेंगे। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। शास्त्री जी अपने रेल-डिब्बे में स्टेशन पर ठहरे। जब हम लोग गांव से लौट रहे थे, तब मैंने शास्त्री जी से भोजन के लिए कहा तो बोले—"दिन को तो खाता ही नहीं, खाता भी हूं तो थोड़ा-बहुत फल-फूल, हां, शाम को आपके यहां अवश्य खाऊंगा।" बहुत आग्रह करने पर भी शास्त्री जी ने स्टेशन पर अपने डिब्बे में ही आराम करना पसन्द किया। रेलवे मिनिस्टर का रेलवे स्टेशन पर अपने डिब्बे में आराम करना असाधारण और आश्चर्य-जनक लगते हुए भी मुझे अत्यन्त स्वाभाविक लगा। शास्त्री जी के जीवन की इस स्वाभाविकता ने ही उन्हें जनसाधारण का व्यक्ति बना दिया था, और जो उनके सम्पर्क में आता, वही उन्हें अपना-सा अनुभव करने लगता था।

रेल की दुर्घटना हुई और शास्त्री जी को लगा कि वही इस दुर्घटना के कारण हैं, मानो उन्होंने वह पुल बनवाया था जो टूट गया, मानो वही उस गाड़ी के ड्राइवर थे जो दरिया में जा पड़ी। अपनी जिम्मेदारी को इस हद तक महसूस करना और हर किसी का कसूर अपने कन्धों पर

ले लेना—यह अपने देश की राजनीति में एक अभूतपूर्व घटना थी। लोग तो कसूरवार होते हुए भी अपने को बेकसूर साबित करते हैं, यहां एक बेकसूर आदमी अपने को कसूरवार समझ रहा था। जिस दिन शास्त्री जी ने रेलवे-मिनिस्टरी से त्यागपत्र दिया उस दिन उन्होंने देश की जनता के हृदय पर अपनी अमिट छाप स्थापित कर ली।

शास्त्री जी का व्यवहार ऐसा रहा जिससे निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वे अपरिचितों के लिए भी परिचित-से थे, दूरवालों के लिए भी नजदीक-से थे; अपनों के लिए तो वे अपने थे ही; परायों के लिए भी अपने-से बन गये थे।

परिशिष्ट

गुरु नानक देव

शब्दार्थ

ऐक्य---एकता। 'एक' शब्द से ऐक्य और एकता बने हैं।
भविष्यवाणी---भविष्य के सम्बन्ध में कुछ कहना।
नैसर्गिक---प्राकृतिक। निसर्ग में 'इक' प्रत्यय जोड़कर नैसर्गिक शब्द बनता है।
पद्म---कमल, सरोज, सरसिज।
शिथिल---थका हुआ, ढीला।
एकेश्वरवादी---एक ईश्वर को मानने वाला।
आदि गुरु---प्रथम गुरु।
अस्तित्व---विद्यमानता।
अस्ति---होना।
नास्ति---न होना।
कीर्तिगान---यशोगान।
पछाड़ा---हरा दिया।
चकनाचूर---नष्ट करना।
आच्छादित---ढका हुआ।
अभिप्राय---मतलब, प्रयोजन।
विशिष्टता---विशेषता।
प्रवर्तित---आरम्भ किया हुआ, चलाया हुआ।
निरीह---सीधी-सादी और निर्दोष, इच्छा रहित।
आविर्भाव---जन्म दिया, प्रकट किया, सामने लाये।
निर्गुण---गुण रहित, निर्गुण ब्रह्म को आकार एवं गुण रहित माना जाता है। इसका विलोम 'सगुण' है।
अवतरण---उतरना, जन्म।
कालान्तर---कुछ समय के बाद।
प्रपंच---ढोंग।
आसक्त---लिप्त, मुग्ध। इसका विलोम 'अनासक्त' है।
याचक---याचना करने वाला, भिक्षुक।
अहंकार---घमंड।
अतिशयोक्ति---बढ़ा-चढ़ा कर कही हुई बात।
परमार्थ---मोक्ष।

मान्यता—धारणा ।
आडम्बर—ढकोसला, ढोंग ।
आक्रामक—आक्रमण करने वाला, चढ़ाई करने वाला ।
साष्टांग—पूरे अंगों से, लेट कर (प्रणाम करना) ।
आपत्ति—विरोध, संकट ।
सग्रहीत—इकट्ठा किया हुआ। यह शब्द 'संग्रह' से बना है ।
चिरविश्रुत—बहुत दिनों से सुना हुआ ।
अल्पवय—छोटी अवस्था वाला ।
प्रशस्त—साफ-सुथरा, विस्तृत ।
हस्तगत—हाथ में आया हुआ ।
अनुर्वरा—बंजर, जो उपजाऊ न हो। 'उर्वरा' भूमि उपजाऊ होती है, अनुर्वरा बंजर।
प्रतिकूल—विपरीत। 'कूल' में 'अनु' और 'प्रति' लगाने से अनुकूल और प्रतिकूल बनते हैं ।

प्रश्न

१. गुरु नानक का जन्म कब और कहां हुआ ?
२. ज्योतिषी ने नानक के विषय में क्या भविष्यवाणी की ?
३. नानक जी के विद्यार्थी-जीवन की क्या विशेषता थी ?
४. पिता ने उनके स्वभाव को बदलने के लिए क्या किया ?
५. गुरु नानक गृहस्थ जीवन से क्यों उदासीन हुए ?
६. उन्होंने कहां-कहां एकेश्वरवाद का प्रचार किया ?
७. उनकी शिष्य-परम्परा में कौन-कौन से सन्त हुए ?

कबीरदास

शब्दार्थ

स्थायी—पक्का, सदा रहने वाला। इसके विपरीत 'अस्थायी' होता है ।
प्रयोजन—मतलब, उद्देश्य ।
निरीह—इच्छा रहित ।
वन्दनीय—वन्दना के योग्य ।
दुलारना—प्यार करना ।
शव-क्रिया—अन्तिम संस्कार ।
हेय—निन्दनीय। इसी प्रकार से 'प्रेय' और 'श्रेय' शब्द भी बनते हैं।
वास्ता—लगाव, सम्बन्ध ।
अवधूत—संन्यासी, साधु, योगी ।

अर्जित करना—प्राप्त करना, एकत्रित करना।

दम्पति—पति-पत्नी।

जिज्ञासु—जानने की इच्छा रखने वाले।

ईहा—इच्छा।

अस्पृश्य—अछूत।

पाखंडियों—ढोंगियों।

अर्पित करना—दे देना।

आजीवन—जीवन भर। 'आ' लगाकर आमरण भी बनता है।

जन-श्रुति—लोक में फैली हुई खबर, अफवाह।

प्रश्न

१. कबीर का जन्म कहां हुआ ?
२. उनका पालन-पोषण किसने किया ?
३. वे किन मान्यताओं में विश्वास करते थे ?
४. उनके चरित्र की क्या-क्या विशेषताएं थीं ?
५. उनकी मृत्यु पर शिष्यों में क्या विवाद हुआ ? वह विवाद कैसे सुलझा ?
६. मृत्यु के समय वे काशी से मगहर क्यों चले गये ?
७. कबीर के जीवन से हमें क्या प्रेरणा मिलती है ?

वीरवर दुर्गादास राठौर

शब्दार्थ

चिरविश्रुत—बहुत दिनों से सुना हुआ। (वि+श्रुत) विशेष सुना हुआ।

दमन—दबाना।

जड़ काट देना—मिटा देना, नष्ट कर देना।

अन्यत्र—दूसरी जगह। इसी प्रकार अत्र, सर्वत्र भी बनता है। 'अत्र' का अर्थ है यहाँ और 'सर्वत्र' का अर्थ है सब जगह।

प्रशस्त नगर—लम्बा चौड़ा सुन्दर नगर।

राजाज्ञा—राजा की आज्ञा।

बाग़ी—विरोधी।

आन्तरिक अभिप्राय—भीतरी मतलब। वास्तविक उद्देश्य।

वाकिफ़—परिचित।

हस्तक्षेप—रुकावट, बाधा।

आग्रह—हठ।

कीर्ति—यश।

प्रश्न

१. वीरवर दुर्गादास का जन्म कहां हुआ ? उनके वंश तथा पिता का नाम बताइये ।
२. बचपन में ही उन्होंने क्या विशेष कमाल किया ?
३. औरंगजेब जोधपुर महाराज के साथ कैसा व्यवहार करना चाहता था और क्यों ?
४. औरंगजेब ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए जसवन्त सिंह को कहां-कहां लड़ने भेजा ?
५. जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् दुर्गादास ने उनके कुल की रक्षा किस प्रकार की ?
६. अजीतसिंह कौन था ? उन्हें जोधपुर की गद्दी पर किसने बिठाया ?
७. दुर्गादास जी की स्वामि-भक्ति के क्या-क्या प्रमाण थे ?
८. दुर्गादास जीवन के अन्तिम वर्षों में उदयपुर क्यों आ गये ।
९. उदयपुर के महाराणा ने उनके साथ कैसा व्यवहार किया ?
१०. दुर्गादास के जीवन से हमें क्या प्रेरणा मिलती है ?

महाराणा प्रताप

शब्दार्थ

असहाय—जिनका कोई मददगार न हो । इसी अर्थ में निस्सहाय भी बोला जाता है ।

दृढ़प्रतिज्ञ—पक्की प्रतिज्ञा वाला । जो अपने वचनों पर अटल रहता है वह दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति होता है ।

अजेय—जिसे जीता न जा सके ।

उद्यत—तैयार । प्रस्तुत और सन्नद्ध भी इसी अर्थ में आते हैं ।

विजेता—जीतने वाला।
विजित—जीते जाने वाले।
अटारी—घर का ऊपरी भाग।
सातंक—डर के मारे। आतंकित हित।
आच्छादित—ढका हुआ। (आ+छादित) छादन का अर्थ है ढकना। चारों ओर से भली प्रकार ढका हुआ।
सहिष्णुता—सहनशीलता।
प्रत्युत—अपितु।
जन-संहार—मार-काट, जन-नाश या जन-हत्या।
अनिवार्य—आवश्यक।
ध्वजा—पताका, झंडा।
लक्ष्य—निशाना।
संकल्प—प्रण।

प्रश्न

१. महाराणा प्रताप का जन्म कब और किस कुल में हुआ ?

२. उस समय मेवाड़ की कैसी परिस्थिति थी ?

३. अकबर को तूफान क्यों कहा गया है ?

४. 'तूफान और चट्टान' का तात्पर्य स्पष्ट करके समझाइये।

५. मानसिंह प्रताप के विरुद्ध क्यों हुआ ?

६. प्रताप ने मेवाड़ का राज्य बचाने के लिए क्या-क्या किया ?

७. हल्दी घाटी के युद्ध का विवरण लिखिये।

८. प्रताप के चरित्र की क्या-क्या विशेषताएं थीं और उनसे हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

९. विन्सेन्ट स्मिथ ने लिखा है, 'वे पराजित स्त्री-पुरुष विजेता की अपेक्षा अधिक महान् थे'—क्यों ?

१०. राणा की दृढ़-प्रतिज्ञायें क्या-क्या थीं ?

झाँसी की महारानी वीरांगना लक्ष्मीबाई

शब्दार्थ

सूर्यास्त—सूर्य छिपना । सूर्य के उदय होने को सूर्योदय और डूबने को सूर्यास्त कहते हैं।

साध्वी—पतिव्रता या पवित्र आचरण वाली ।

कृत्यों—कार्यों ।

अवैध—अनियमित । विधि के अनुसार काम करने को वैध कहते हैं और उलटे काम को अवैध ।

रणबांकुरे—युद्ध में वीरता दिखाने वाले शूरवीर ।

सुदृढ़—बहुत मजबूत । 'सु' उपसर्ग लगाने से विशेष का बोध होता है, जैसे, सुचारु, सुप्रसिद्ध ।

शौर्य—वीरता ।

अरुण—लाल । इसी से अरुणिमा शब्द बना है जिसका अर्थ है लाली ।

कीर्ति—यश ।

ज़र्रा-ज़र्रा—कण-कण ।

दत्तक—गोद लिया हुआ लड़का।

मांग का सिन्दूर पुँछ गया—विधवा हो गयीं ।

आश्वासन—तसल्ली, सान्त्वना, दिलासा ।

वयस्क—बड़ा, पूरी अवस्था प्राप्त करने वाला, बालिग ।

विश्वस्त—विश्वास के योग्य । 'अ' लगाने से अविश्वस्त शब्द बन जायगा जिसका अर्थ होगा जिसका विश्वास न किया जा सके ।

करुणार्द्र—यह शब्द करुणा + आर्द्र दो शब्दों से बना है । 'आर्द्र' का अर्थ है गीला होना, पसीजना—करुणा से पसीज जाना । ऐसे ही 'दयार्द्र' शब्द बना है ।

अरि-दल-मर्दन—शत्रु समूह का नाश ।

स्तम्भित—चकित, सुन्न ।

अश्वारोही—घुड़सवार । अश्व पर सवारी करने वाला ।

नयनाभिराम—नेत्रों को सुन्दर लगने वाला ।

जहर का घूंट पीना—कड़वी बात सहन करना (यह मुहावरा है) ।

मुंह की खाना--हारना, लज्जित होना।

अद्वितीय--जिसका कोई उदाहरण न हो। द्वितीय का अर्थ है दूसरा। जिसके समान दूसरा न हो वह अद्वितीय है।

द्युति—चमक।

कृतज्ञतापूर्ण--अहसान से भरा हुआ। किसी के उपकार को स्मरण रखने वाला कृतज्ञ और उपकार भूलने वाला कृतघ्न कहलाता है।

दैव दुर्विपाक—दुर्भाग्य से।

द्युति—प्रकाश।

प्रश्न

१. लक्ष्मीबाई का जन्म कहां और कब हुआ ?

२. उनके बचपन के क्या नाम थे ?

३. बचपन में उन्होंने कौन सी विपत्तियां झेलीं ?

४. उनका विवाह किससे हुआ ?

५. जीवन में उनको कौन सी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं ?

६. महारानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के साथ कैसा व्यवहार किया ? और इसका क्या बदला उन्हें मिला ?

७. महारानी के युद्ध-कौशल को अपने शब्दों में वर्णन कीजिये।

८. लक्ष्मीबाई के जीवन से हमें क्या-क्या शिक्षाएं मिलती हैं ?

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शब्दार्थ

मर्मज्ञ--जानकार। मर्म का अर्थ है रहस्य। रहस्य जानने वाला मर्मज्ञ कहलाता है।

रूढ़ियां--बहुत दिनों से चली आई हुई प्रथा।

उपनयन—जनेऊ, यज्ञोपवीत।

अपूर्व—अनोखा ।
अभिभूत—पराजित ।
अन्तर्दृष्टि—अन्त:करण की ओर देखने की प्रवृत्ति ।
शोषण—किसी निर्बल को चूसना शोषण कहलाता है ।
हेय—तुच्छ ।
चरमता—चोटी पर, शिखर पर ।
उन्मुख—उस तरफ मुँह कर सके, उत्सुक हो सके ।
अंधानुकरण—आंख मींचकर नकल करना ।
मर्मान्तक—मन में चुभने वाला ।
समकालीनों – उस समय के पुरुषों में ।
सतत—लगातार ।
दैवी प्रकाश—स्वर्गीय ज्योति ।
उत्फुल्ल—प्रसन्न ।
सहानुभूति—किसी को दु:ख में देखकर दु:खी होना ।
प्रयोजन—मतलब, उद्देश्य ।
शस्य-श्यामल—खेती या फसल के कारण से श्यामल ।
विस्तृत—लम्बा चौड़ा ।
कृत्रिम—बनावटी ।
असामयिक निधन—असमय मृत्यु ।
निर्दय प्रहार—कठोर चोट ।
विक्षुब्ध—दुखी ।
प्रतिकूल—विरुद्ध ।
पथ-प्रदर्शक—रास्ता दिखाने वाले ।
ह्रास—कमी । उन्नति का नाम विकास है और अवनति का नाम ह्रास है ।
नियति—दैव, भाग्य ।
करुण क्रन्दन—चीख पुकार करना । दु:खी होकर रोना ।
अर्पण—दे देना । इसी से समर्पण शब्द बना है । भली प्रकार अर्पण करना समर्पण कहलाता है ।
प्रवीण—चतुर ।

प्रश्न

१. गुरुदेव का जन्म कब और कहां हुआ ?
२. बचपन में वे पिता के साथ कहां-कहां गये ?
३. उनकी प्रकृति-प्रियता के कुछ उदाहरण दीजिये ।
४. उनका सबसे बड़ा स्मृति-चिन्ह क्या है ? उसकी विशेषताएं बताइए ।
५. गुरुदेव किस प्रकार की संस्कृति को जन्म देना चाहते थे ?

६. रवीन्द्र बाबू ने अपनी देशभक्ति का परिचय देने के लिये क्या-क्या किया ?
७. संसार में उनका नाम प्रसिद्ध क्यों हुआ ?
८. उनके काव्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

मैथिलीशरण गुप्त

शब्दार्थ

राष्ट्र कवि—जो कवि किसी विशेष प्रान्त तक सीमित न रहकर समूचे देश का बन जाता है वह राष्ट्रकवि कहलाता है।
आविर्भूत—उत्पन्न।
निकट सम्पर्क—किसी के बहुत पास में रहना।
श्मश्रु युक्त—मूंछ सहित।
प्रतीक—प्रतिरूप, उनके जैसा।
ओत-प्रोत—भरा हुआ, समाया हुआ।
अनुयायी—अनुसरण करने वाले।
वृत्त—घेरा।
शीर्षस्थ—सबसे ऊपर का स्थान।
विरासत—जो सम्पत्ति बाप दादे से मिलती है। उत्तराधिकार।
कल्पनातीत—जिसकी कल्पना भी न की जा सके।
अर्जित किया—प्राप्त किया।
संग्राम—युद्ध।
क्षुब्ध—क्रोध सहित।
आक्रोश—क्रोध।
चिर-उपेक्षिता—लम्बे समय से अपमानित।
विभूषित—शोभायमान। भूष का अर्थ है शोभा। विभूषित का अर्थ है भली प्रकार शोभा देना।
अपरिपक्व—जो पकी न हो। कच्ची स्थिति।
सौजन्य—सज्जनता।
सोपान—सीढ़ी।
आत्मदैन्य—अपनी दीनता।
सरोवर—तालाब, जलाशय।
अपवर्ग—मोक्ष।
भुवन सेवा—विश्व की सेवा।
समाधानों—सन्देह दूर करने वाली बातें।

प्रश्न

१. मैथिलीशरण गुप्त के बाल्यजीवन एवं शिक्षा-दीक्षा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

२. मैथिलीशरण गुप्त पर महात्मा गांधी के विचारों का क्या प्रभाव पड़ा ?
३. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ।
४. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने उपेक्षिता नारियों को अपने काव्य का विषय क्यों बनाया ?
५. कवि होने के अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त की अन्य चारित्रिक विशेषतायें कौन-कौन सी थीं ?
६. राम की तरह इस 'भूतल को स्वर्ग' बनाने के लिये हमें किन-किन गुणों को धारण करना चाहिए ?

जगदीश चन्द्र बसु

शब्दार्थ

पराधीन—गुलाम, परवश । स्ववश में रहने वाला स्वाधीन और परवश में रहने वाला पराधीन कहलाता है ।
प्रतिष्ठा—इज्ज़त, आदर ।
दृढ़ संकल्प—दृढ़ निश्चय ।
स्फूर्ति—ताजगी । फुर्ती ।
प्रकृति—कुदरत, स्वभाव ।
विरोध—किसी के मत के प्रतिकूल व्यवहार करना उसका विरोध करना कहलाता है ।
व्ययसाध्य—अधिक रुपया व्यय करने से प्राप्त होने वाली वस्तु ।
प्रेरित—प्रेरणा पाया हुआ ।
प्रतिध्वनि—प्रतिशब्द, वह शब्द जो गूंज कर दुबारा सुनाई पड़े ।
महानुभाव—विशेष व्यक्ति, महान् व्यक्ति ।
अध्यात्म—आत्मा सम्बन्धी ।
मर्यादा—सीमा ।
प्रवृत्ति—इच्छा, मन का झुकाव ।
प्रेरणा—उत्तेजना देना ।
अपमान—बेइज़्ज़ती । किसी को मान देना सम्मान कहलाता है और मान छीनना अपमान है ।
अनुराग—प्रेम ।
उपहास—मजाक, हंसी ।
प्रवाहित—बहता हुआ ।
दिग्दिगन्त—दसों दिशाओं में
करुणार्द्र—करुणा से द्रवित ।
अन्वेषण—खोज ।
वंचित—रहित ।

प्रतिक्रिया–किसी क्रिया का प्रभाव ।
चमत्कारपूर्ण––चमत्कार से भरा हुआ ।
कंपन––हिलना, कांपना ।
विस्मित––अचरज में पड़ा हुआ । बिस्मय का अर्थ है आश्चर्य ।
आश्चर्यान्वित––आश्चर्य में डालने वाला ।
चेतन शक्ति––ज्ञान शक्ति ।

प्रश्न

१. जगदीशचन्द्र बसु की प्रारम्भिक शिक्षा का परिचय दीजिये ।
२. जगदीश चन्द्र बसु ने कौन से दो आविष्कार किये और किस आविष्कार का श्रेय उन्हें मिला ?
३. जगदीश चन्द्र बसु के आविष्कारों के बाद वनस्पति जगत् के प्रति हमारी धारणाओं में क्या अन्तर आ गया ?
४. जगदीश चन्द्र बसु के गुणों का बीस पंक्तियों में वर्णन कीजिये ।
५. वैज्ञानिक बसु की हम यूरोप के किस महान् वैज्ञानिक जादूगर से तुलना कर सकते हैं ? दोनों में कौनसा मौलिक अन्तर था ?
६. जगदीश चन्द्र बसु की जीवनी से हमें क्या प्रेरणा मिलती है ?

विज्ञानाचार्य चन्द्रशेखर वेंकट रमन

शब्दार्थ

अग्रणी––आगे चलने वाले, नेता
तारतम्य––न्यूनाधिक्य ।
चिरकालीन––लम्बे समय तक ।
अन्तर्मुखी––अन्तःकरण में चिन्तन करने वाला दार्शनिक ।
प्रोत्साहन––बढ़ावा ।
अविरत––निरंतर, लगातार, हमेशा ।
चिरस्मरणीय––बहुत दिनों तक याद रखने योग्य, प्रशंसा योग्य ।
प्रखर––तेज ।
अभिशाप––विशेष शाप । किसी के अमंगल की भविष्यवाणी करना ।

उत्सुकता—जानने की इच्छा, तीव्र अभिलाषा।
निर्ममता—कठोरता।
प्रतिभा—तीव्र बुद्धि।
आजीविका—जीवन चलाने का उपाय। उर्दू में इसे 'रोजी' कहते हैं
अभिरुचि—अत्यन्त रुचि, इच्छा।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते—ज्ञान के समान पवित्र इस पृथ्वी पर दूसरी वस्तु नहीं है।
अनुनय—प्रार्थना, निवेदन।
परिकल्पना—किसी बात को पहले से ही सत्य मानकर उसको सत्य सिद्ध करने के लिए प्रमाण ढूँढ़ना; अंग्रेजी में इसे 'हायपोथेसिस' कहते हैं।
बहिर्मुखी—बाहर की ओर। अन्तः-करण की ओर जाने वाली वृत्ति को अन्तर्मुखी और बाहरी वृति को बहिर्मुखी कहते हैं।
अनुसन्धान—प्रयोगात्मक खोज।
प्रभृति—इत्यादि, आदि।
तन्मयता—लीनता, एकाग्रता, लगन।
रश्मियाँ—किरणों।
घनिष्ठता—समीपता, प्रगाढ़ मैत्री।
अभिप्राय—मतलब, इरादा, आशय, अर्थ।
स्तब्धता—स्थिरता, दृढ़ता।
लोकोत्तर—अद्भुत, विलक्षण, विचित्र।
निवृत्ति—मुक्ति, छुटकारा।
चिरस्थायी—अधिक दिनों तक रहने वाला। टिकाऊ।
वात्सल्य भाजन—स्नेह का पात्र।
प्रतियोगिता—होड़, होड़ल गाने वाला प्रतियोगी कहलाता है।
दुरूह—कठिन, गूढ़, जटिल।
उज्ज्वल—साफ।
नीरस—सूखा; रसहीन; इसका विलोम सरस है।
सम्भावना—उम्मीद।
विचार-विमर्श—सलाह, मशविरा।
अदम्य उत्साह—प्रबल उत्साह, तेज उत्साह।
ऊहापोह—तर्क-वितर्क।
संयोजन—जोड़ने की क्रिया।
अनुराग—प्रेम।
नयनाभिराम—आंखों को अच्छा लगने वाला।
नेतृत्व—नेतागिरी। यह शब्द नेता से बना है।
वैधानिक—विधान से सम्बन्धित।

अनुशीलन—मनन, विचार, चिन्तन ।
आकर्षणहीन—खींचने की शक्ति से रहित । अप्रिय ।
स्वर्णिम स्वप्न—सुनहरा सपना ।
संपर्क—संबंध, साथ, संयोग ।
स्पर्धा—दूसरों से बढ़ जाने की इच्छा ।
सूत्रबद्ध—नियमबद्ध । एक दूसरे से बंधा हुआ ।
अखण्ड—जिसका टुकड़ा न हो सके ।
सर्वस्वीकृति—सबसे स्वीकृत ।
आंतरिक—अन्दर का ।
मान्यता—विचार ।
आशंका—डर । किसी अनहित की शंका को आशंका कहते हैं ।
मौलिक—मूल सम्बन्धी । मूल में इक प्रत्यय लगाने से यह शब्द बना है ।

प्रश्न

१. रमन की शिक्षा-दीक्षा कहां और कैसे हुई ?
२. विज्ञान के प्रति रमन की श्रद्धा बताने के लिए दो उदाहरण दीजिए ।
३. रमन का नाम विश्व के वैज्ञानिकों में क्यों प्रसिद्ध हुआ ?
४. रमन की जीवनी से हमें क्या प्रेरणा मिलती है ?
५. विश्व ने वैज्ञानिक रमन का सम्मान किस-किस प्रकार किया ?

सुभाषचन्द्र बोस

शब्दार्थ

सार्वजनिक—साधारण लोगों का; जनता का ।
स्पष्टवादिता—साफ-साफ कहने की आदत ।
तेजस्विता—प्रभावशालिता ।
मेधावी—बुद्धिमान् ।
मुक्त—छुटकारा पाना ।
प्रोटेस्टेंट—ईसाइयों का एक सम्प्रदाय ।
अग्रगण्य—सबसे आगे जिसकी गणना हो ।
आस्था—श्रद्धा ।
उपलब्ध—प्राप्त ।
परिजन—कुटुम्बी ।
विप्लव—विद्रोह, क्रांति ।
शिक्षणालय—स्कूल, शिक्षा देने की जगह ।
संचालन—चलाना ।

निःशुल्क—मुफ्त, बिना पैसे का।
औपनिवेशिक—उपनिवेश संबंधी।
वामपक्षी—विरोधी।
आमरण—मृत्यु तक।
कुहरा—धुन्ध।
वातावरण—वायुमंडल।
वृत्ति—आजीविका।
आध्यात्मिक—आत्मा सम्बन्धी।
लक्ष्य—ध्येय।
शुभचिंतक—भला चाहने वाला।
परमार्थ—मोक्ष।
अभियोग—जुर्म, किसी पर मुकदमा चलाना अभियोग लगाना कहलाता है।
तीव्र—तेज।
अगाध—बहुत गहरा।
हमदर्द—सहानुभूति रखने वाला।

प्रश्न

१. सुभाष बाबू ने अफसर बनने से क्यों इन्कार कर दिया?
२. सुभाष बाबू के अनुसार युवकों में कौनसे गुण होने चाहिए? युवक उन्हें किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं?
३. काबुल में सुभाष बोस की राजनीतिक परेशानियों तथा सफलताओं का ब्यौरा दीजिए।
४. बर्मा में आ० हि० फौज के समक्ष सुभाष बाबू ने जो भाषण दिया उससे आपके मन में किन भावनाओं का संचार होता है?
५. सुभाष बाबू के जीवन के अन्तिम दिनों का वर्णन कीजिए।
६. सुभाष बोस के स्वभाव का वर्णन पन्द्रह बीस पंक्तियों में कीजिए।

सरदार पटेल

शब्दार्थ

सत्याग्रह—सत्य के लिए आग्रह। न्याय के लिए कष्ट सहना सत्याग्रह कहलाता है।
असमर्थ—मजबूर, विवश। सामर्थ्य रखने वाला समर्थ कहलाता है। जिसमें शक्ति न हो वह असमर्थ है।

विपत्ति--संकट ।
संचालक--चलाने वाला ।
अजेय--जो जीता न जा सके ।
विषम--कठिन ।
क्षमता--शक्ति ।
लौहपुरुष--जो लोहे के समान दृढ़ रहने वाला हो । दृढ़ संकल्प ।
अनुयायी--पीछे चलने वाला ।
असहयोग राज्य को किसी प्रकार की सहायता न देना ।
रजाकार--कट्टर मुसलमानों की एक संस्था के सदस्य जो हैदराबाद को भारत में मिलाने का विरोध करते थे ।
हस्तक्षेप--रुकावट ।
दूरदर्शिता--दूर तक देखना, सोचना । भविष्य में होने वाली सम्भावनाओं का पहले से ज्ञान होना दूरदर्शिता कहलाती है और ऐसे व्यक्ति दूरदर्शी कहलाते हैं ।

प्रश्न

१. सरदार पटेल के बाल्यकाल का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
२. सरदार पटेल ने किसानों में बारदोली में लगान-बन्दी का आन्दोलन किस प्रकार चलाया ?
३. सरदार पटेल 'बर्फ से ढके ज्वालामुखी थे' सिद्ध करने के लिए दो उपयुक्त उदाहरण दीजिए ।
४. स्वराज्य-प्राप्ति के उपरान्त पटेल ने देश की एकता के लिए क्या प्रयत्न किए ?

पं० जवाहरलाल नेहरू

शब्दार्थ

पूर्व पुरुष--पूर्वज, परदादा इत्यादि ।
कामयाब--सफल ।
समृद्ध--धनी ।
राष्ट्रीय नियंत्रण--राष्ट्र का अनुशासन ।
आतंक--डर, भय ।
अध्ययन--पठन-पाठन ।
विभूति--ऐश्वर्य ।
आत्मकथा--अपने जीवन की कहानी ।
वास्तविक रूप--असली स्वरूप ।

होमरूल का आन्दोलन—डा० एनी बेसेंट ने स्वराज्य-प्राप्ति का एक आन्दोलन चलाया था जिसे होमरूल आन्दोलन कहते हैं।

सत्याग्रह—महात्मा गांधी ने सन् १९२० ई० में अंग्रेजों के विरुद्ध एक प्रकार का युद्ध छेड़ा था जिसमें स्वयं कष्ट सहकर भी न्याय और धर्म की रक्षा करना अनिवार्य माना गया था। अर्थात् सत्य की रक्षा के लिए कष्ट सहन का आग्रह।

दुराग्रह—हठ।

आश्वासन—ढाढ़स, किसी को दुःख में सहारा देना।

जागीरदारी प्रथा—अंग्रेजी राज्य में हमारे देश में बड़े-बड़े ज़मींदारों और ताल्लुकेदारों का शासन गरीब किसानों पर था। जमींदार किसानों से मालगुज़ारी और बेगार लेते थे। इस प्रथा को जमींदारी प्रथा कहते हैं।

नादिरशाही हुक्म—नादिरशाह ने एक बार दिल्ली में सर्व वध की आज्ञा दी। लोग कितनी ही प्रार्थना करते रहे पर उसने किसी की एक न सुनी। तब से अत्याचार की आज्ञा का नाम नादिरशाही हुक्म है।

कर्मठ—कठोर श्रम करने वाले।

मार्शल लॉ—जलियांवाले बाग में सर जान मार्शल ने एक विशाल सभा में जनता को रेंग-रेंग कर निकलने की आज्ञा दी। जब लोग सभा छोड़ कर बाहर जाने लगे तो उसने मशीनगन चलाने की आज्ञा दी। इसी को मार्शल लॉ कहते हैं। इसे हम सैनिक शासन भी कह सकते हैं।

माडरेट नेता—अंग्रेजी राज्य में नेताओं का एक वर्ग ऐसा था जो अंग्रेजों से मेल-मिलाप करके स्वराज्य स्थापित करना चाहता था। कांग्रेस वालों को उग्र नेता और डा० सप्रू तथा डा० जयकर को माडरेट तथा लिबरल नेता कहते थे।

श्रेय—यश । संसार में दो प्रकार के लाभ हैं : श्रेयस् और प्रेयस् । सांसारिक सुखों को प्रेयस् और मानसिक सुखों को श्रेयस् कहते हैं ।

पतिपरायणा पत्नी—पति को ही सब कुछ समझने वाली स्त्री ।

अधिवेशन—जलसा, उत्सव । किसी संस्था के विशेष उत्सवों को अधिवेशन कहते हैं ।

अभिनन्दन—स्वागत ।

रमणी—स्त्री ।

साम्यवाद—राजनीति का एक सिद्धान्त है, जिसके अनुसार देश की सम्पत्ति सरकार की मानी जाती है और प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से जीवन को सुखी बनाने का अधिकार होता है ।

उत्तराधिकारी—वारिस, किसी की मृत्यु के उपरान्त उसके अधिकारों का स्वामी ।

अन्तर्राष्ट्रीय—विभिन्न राष्ट्रों से सम्बन्ध रखने वाली ।

महाप्रयाण—स्वर्गवास ।

प्रश्न

१. निम्नांकित का अर्थ स्पष्ट कीजिए :—
   होमरूल, कन्वेनशन, सत्याग्रह, माडरेट नेता ।
२. इंग्लैंड की शिक्षा ने नेहरू के जीवन में कौनसी विशेषताओं को जन्म दिया ?
३. नेहरू के व्यक्तित्व की क्या विशेषताएँ थीं ?
४. नेहरू के प्रेरणादायी जीवन से हमें क्या शिक्षा मिलती है ? विस्तारपूर्वक लिखें ।

लाल बहादुर शास्त्री

शब्दार्थ

कतिपय—कुछ, थोड़े ।

आभास—ज्ञात होना । किसी बात की थोड़ी-थोड़ी जानकारी होने को आभास मिलना कहते हैं ।

मौन—चुपचाप ।

बिगुल—युद्ध का बाजा।

दायित्व—जिम्मेदारी। किसी कार्य के बनने बिगड़ने का भार सिर पर लेना दायित्व उठाना कहते हैं।

सदाशयता—हृदय की पवित्रता।

अनुकरणीय—नकल करने योग्य। किसी के आचरण को देखकर उसी के अनुसार कार्य करना अनुकरण कहलाता है और जिस व्यक्ति का अनुकरण किया जाए वह अनुकरणीय कहलाता है।

शिथिलता—कमजोरी।

दर्पहत—घमण्ड का चकनाचूर होना।

आजीवन—जीवन भर।

अमिट छाप—कभी न मिटने वाला चिन्ह।

अभूतपूर्व घटना—जैसी घटना पहले कभी न घटी हो।

प्रश्न

१. श्री लालबहादुर शास्त्री के प्रारम्भिक जीवन का बीस से तीस पंक्तियों में परिचय दीजिए।
२. नेहरू और शास्त्री के व्यक्तित्व की समान-धर्मी (एकसी) विशेपताओं पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।
३. शास्त्री जी 'परायों को भी अपना समझते थे'—इसकी पुष्टि में दी गई कहानी को लिखिये।
४. शास्त्री जी ने भारत-पाक मैत्री को स्थिर करने के लिए किस समझौते पर हस्ताक्षर किये ? उससे देश पर क्या प्रभाव पड़ा ?
५. शास्त्री जी के गुणों पर प्रकाश डालने के लिए पच्चीस पंक्तियाँ लिखिये।

वस्तुनिष्ठ और लघूत्तर प्रश्न

गुरु नानक देव

(१) ज्योतिषी नानक का ग्रहफल देख कर चकित क्यों रह गया ?

(क) अच्छे भाग्य का योग देखकर ।
(ख) श्रेष्ठ नेतृत्व का योग देखकर ।
(ग) उच्च राज योग देख कर ।
(घ) अधिक धन का योग देखकर ।
(च) असाधारण प्रतिभा का योग देखकर ।

(२) नानक के गुरु आश्चर्यचकित किस बात से हुए ?

(क) हिसाब-किताब की आलोचना सुनकर ।
(ख) उपासना की मुद्रा में बैठा देखकर ।
(ग) बालकों को उपदेश देता देखकर ।
(घ) 'ओंकार' शब्द की व्याख्या सुनकर ।
(च) छोटी अवस्था में दाँत आए देखकर ।

(३) नानकदेव के पिता उनसे इसलिये क्रुद्ध हो गये क्योंकि वे :—

(क) नौकरी के लिए तैयार नहीं हुए ।
(ख) सांसारिक प्रपंचों से उदास रहने लगे ।
(ग) पढ़ाई-लिखाई को निरन्तर टालने लगे ।
(घ) विवाह-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया ।
(च) नमक का द्रव्य अन्यत्र खर्च कर दिया ।

(४) नानक सब धर्मों का समान भाव से आदर क्यों करते थे ?

(क) सब धर्मों का मूल एक होने के कारण ।
(ख) अपने स्वभाव की उदारता के कारण ।

(ग) किसी धर्म में दृढ़ विश्वास न होने के कारण।
(घ) धर्म-ग्रंथों का अध्ययन न होने के कारण।
(च) कट्टरता की भावना के विरोध के कारण।

(५) गुरु नानक ने मक्का की यात्रा क्यों की थी ?
(क) मुक्ति पाने के लिए।
(ख) हज करने के लिए।
(ग) मुसलमानों का विश्वास पाने के लिए।
(घ) मुसलमान धर्म में सुधार करने के लिए।
(च) मन्दिर और मसजिद में एक ईश्वर बताने के लिए।

(६) देश-विदेश भ्रमण का नानक पर क्या प्रभाव पड़ा ?
(क) परमार्थ की भावना बढ़ गयी।
(ख) मानवता के प्रति स्नेह उत्पन्न हो गया।
(ग) खण्डन-मण्डन क. प्रवृत्ति जाग्रत हो गयी।
(घ) निर्गुण ब्रह्म की महानता स्वीकार कर ली।
(च) सिक्ख समुदाय की स्थापना का विचार पैदा हुआ।

(७) नानक ने देश को कौन सा संदेश दिया ?
(क) जातीय एकता का।
(ख) जातीय गौरव का।
(ग) जातीय कट्टरता का।
(घ) जातीय विस्तार का।
(च) जातियों को मिलाने का।
(छ) वीरता का।

(८) गुरु नानक हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर क्यों माने जाते हैं ?

(९) गुरु नानक के सिद्धान्तों और अन्य संतों के सिद्धान्तों में क्या भिन्नता है ?

(१०) नानक का ईश्वर के प्रति अखण्ड विश्वास बताने वाली घटना लिखिए।

(११) काजियों को नानक के किस व्यवहार पर लज्जित होना पड़ा ?

कबीरदास

(१) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'ना हिन्दू ना मुसलमान' माना क्योंकि वे—

(क) जुलाहे थे ।
(ख) मुसलमान नहीं थे ।
(ग) हिन्दू नहीं थे ।
(घ) अ-धार्मिक थे ।
(च) नाथ योगियों से थे ।

(२) अपनी रचनाओं में कबीर ने 'साध' कहकर किसको सम्बोधित किया है ?

(क) सिद्धों का मत मानने वाले को ।
(ख) जोगियों का मत मानने वाले को ।
(ग) कबीर का मत मानने वाले को ।
(घ) अवधूत मत मानने वाले को ।
(च) मौलवियों का मत मानने वाले को ।

(३) कबीर की उक्तियाँ बेधने वाली और व्यंग चोट करने वाली क्यों होती थीं ?

(क) अनुभवाधारित होने के कारण ।
(ख) खंडनाधारित होने के कारण ।
(ग) सरलता-प्रधान होने के कारण ।
(घ) निर्गुण-समर्थन के कारण ।
(च) धार्मिक उदारता के कारण ।

(४) कबीरदास का सर्वत्र सम्मानित होने का कारण क्या था ?

(क) असत्य का विरोध ।
(ख) स्वार्थ का विरोध ।

(ग) पंडितों का विरोध ।
(घ) मौलवियों का विरोध ।
(च) भेदभाव का विरोध ।

(५) कबीर ने अपने जीवन में सर्वाधिक महत्त्व किसको दिया ?
(क) श्रद्धा ।
(ख) भक्ति ।
(ग) प्रेम ।
(घ) जप-तप ।
(च) वैराग्य ।

(६) कबीर के उपदेशों का विभिन्न जातियों पर क्या प्रभाव हुआ ?
(क) एकता स्थापित हुई ।
(ख) धर्मालोचना बढ़ी ।
(ग) भक्ति-भाव बढ़ा ।
(घ) वैराग्य पैदा हुआ ।
(च) असंतोष बढ़ा ।

(७) कबीरदास अपने मस्तिष्क का द्वार सदा खुला रखते थे क्योंकि वे—
(क) सिर से पैर तक मस्तमौला थे ।
(ख) धार्मिक सिद्धान्तों से अपरिचित थे ।
(ग) खरा-खोटा नहीं परख पाते थे ।
(घ) लोकप्रिय होना चाहते थे ।
(च) सत्य ढूंढ़ने के लिए लालायित थे ।

(८) द्विवेदी जी के मतानुसार कबीर मत की क्या विशेषता थी ?

(९) कबीर मरते समय काशी ही में रहते तो आप उनके सम्बन्ध में क्या सोचते ?

(१०) कबीर का पंडितों को सम्बोधित करने का क्या उद्देश्य था ?

(११) कबीर ने सबके लिए कौन सी आचार संहिता तैयार की ?

वीरवर दुर्गादास राठौर

(१) लेखक के मत में राजस्थान के शूरमाओं का नाम चिर-विश्रुत है :-

(क) नीति-कुशलता और प्रबन्ध-पटुता के कारण ।
(ख) शिष्टाचार और सहृदयता के कारण ।
(ग) त्याग-वृत्ति और तेजस्विता के कारण ।
(घ) शूरता और वीरता के कारण ।
(च) रसिकता और शिष्टाचार के कारण ।

(२) महाराजा जसवन्तसिंह को दक्षिण की सूबेदारी क्यों दी गई थी ?

(क) राजपूतों से मैत्री बढ़ाने के लिये ।
(ख) मराठों का दमन करने के लिये ।
(ग) उनको सम्मानित करने के लिये ।
(घ) राजपूतों को शांत रखने के लिये ।
(च) जोधपुर से उन्हें दूर रखने के लिये ।

(३) 'प्रशस्त' शब्द का अर्थ है—

(क) विशाल ।
(ख) सुन्दर ।
(ग) विस्तृत ।
(घ) बड़ा ।
(च) प्रशंसा ।

(४) राजपूत सरदार दुर्गादास का मुँह क्यों देखते थे ?

(क) वीरता के कारण ।
(ख) देशभक्ति के कारण ।
(ग) स्वामि-भक्ति के कारण ।
(घ) कुशाग्र बुद्धि के कारण ।
(च) दृढ़ता के कारण ।

(५) औरंगजेब अजीतसिंह को दिल्ली क्यों रखना चाहते थे ?
   (क) राजनीति की शिक्षा देने के लिये ।
   (ख) जोधपुर का उत्तराधिकारी बनाने के लिये ।
   (ग) उचित रीति से लालन-पालन के लिये ।
   (घ) राजपूतों का विश्वास-पात्र बने रहने के लिये ।
   (च) उचित अवसर देखकर वध के लिये ।

(६) अजीतसिंह जी दुर्गादास को जोधपुर से अन्यत्र क्यों रखना चाहते थे ?
   (क) राजनैतिक प्रपंचों से बचे रहने के लिये ।
   (ख) अनुचित हस्तक्षेप से मुक्त रहने के लिये ।
   (ग) अधिक स्वतंत्रतापूर्वक काम कर सकने के लिये ।
   (घ) प्रजा की दृष्टि में वास्तविक राजा बने रहने के लिये ।
   (च) दोनों के मध्य प्रेम-संबंधों की स्थिरता के लिये ।

(७) मारवाड़ में दुर्गादास की कीर्ति के खूब गान होने का क्या कारण है ?

(८) छोटी उम्र में दुर्गादास ने जोधपुर राज्य का कौन-सा बड़ा भारी काम किया ?

(९) राजसिंह ने रानी को अपने आश्रय में रखकर भी अजीतसिंह को दुर्गादास को क्यों सौंपा ?

(१०) मारवाड़ में यह उक्ति क्यों प्रसिद्ध है—'माता एहा पूत जन जेहा दुर्गादास' ।

(११) दुर्गादास से युद्ध करने पर औरंगजेब की क्या हालत हुई ?

(१२) "लो अपना राजपाट, मैं अब ज़ाता हूं" ।
दुर्गादास की इस उक्ति से उनके चरित्र की कौनसी विशेषता प्रकट होती है ?

महाराणा प्रताप

(१) "महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी के युद्धक्षेत्र में आक्रामकों को घर पछाड़ा", लेखक के इस कथन का क्या कारण है ?

(क) महाराणा की जीत ।
(ख) महाराणा की लोकप्रियता ।
(ग) महाराणा की देशभक्ति ।
(घ) महाराणा का युद्धकौशल ।
(च) महाराणा का त्याग ।

(२) विपरीत परिस्थितियों में भी महाराणा ने अकबर की आधीनता स्वीकार नहीं की । इस तथ्य से उनका कौन-सा गुण प्रकट होता है ?

(क) वीरता ।
(ख) देशभक्ति ।
(ग) अटूट धैर्य ।
(घ) बुद्धिमत्ता ।
(च) कूटनीतिज्ञता ।

(३) "चित्तौड़ के नीचे मैदानों में कोई खेती न करे, कोई ग्वाला जानवरों को न चराये और कोई गृहस्थ दिया न जलाये" राणा प्रताप ने इस नाश की आज्ञा क्यों दी ?

(क) शत्रुओं को निराश कर देने के लिये ।
(ख) शत्रुओं के पैर न जमने देने के लिये ।
(ग) शत्रुओं को क्रुद्ध कर देने के लिये ।
(घ) चित्तौड़ को वीरान कर देने के लिये ।
(च) जनता को इस स्थान से भगा देने के लिये ।

(४) "मैं तुमसे भेंट करने को बिलकुल तैयार रहूंगा" महाराणा की इस उक्ति में कौनसा भाव प्रकट होता है ?

(क) गर्व ।
(ख) क्रोध ।
(ग) आत्मविश्वास ।
(घ) अभिमान ।
(च) वीरता ।

(५) महाराणा प्रताप का युद्ध के समय शत्रु सेना में अकेले ही घुसने का क्या उद्देश्य था ?

(क) युद्ध जीतना ।
(ख) मानसिंह को मारना ।
(ग) सलीम को मारना ।
(घ) वीरता दिखाना ।
(च) घोर युद्ध करना ।

(६) झाला सरदार ने मेवाड़ का राज्य-छत्र अपने ऊपर क्यों ताना ?

(क) शत्रुओं को अपनी शान शौकत दिखाने के लिये ।
(ख) शत्रुओं को अपनी निर्भीकता दिखाने के लिये ।
(ग) स्वयं को मेवाड़ का महाराणा घोषित करने के लिये ।
(घ) शत्रुओं का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करने के लिये ।
(च) शत्रुओं के समक्ष राणा प्रताप को लज्जित करने के लिये ।

(७) लेखक की दृष्टि में प्रताप की सफलता का सबसे बड़ा कारण क्या था ?

(क) धार्मिकता ।
(ख) विनम्रता ।
(ग) दृढ़ता ।
(घ) उदारता ।
(च) गंभीरता ।

(८) राणा प्रताप ने कौन सी प्रतिज्ञा की थी ?

(९) प्रताप जंगलों में कैसा जीवन बिता रहे थे ?

(१०) लेखक ने यह क्यों कहा "एक बार फिर भारत के इतिहास का निर्माण वीरता ने नहीं भाग्यों ने किया ।"

(११) यदि महाराणा के द्वारा मानसिंह मारा जाता तो हल्दीघाटी के युद्ध में क्या परिवर्तन आ जाता ?

(१२) राजा मानसिंह ने नाराज होकर महाराणा को क्या कहा ?

(१३) प्रतापसिंह के गद्दी पर बैठने के समय मेवाड़ राज्य की क्या स्थिति थी ?

(१४) महाराणा यह क्यों कहते थे कि "यदि महाराणा सांगा और मेरे बीच कोई और न होता तो चित्तौड़ कभी मुसलमानों के हाथ न जाता ।"

(१५) लेखक ने महाराणा की तुलना चट्टान से क्यों की है ?

(१६) अकबर के लिये लेखक ने 'तूफान' शब्द का प्रयोग क्यों किया है ?

झाँसी की महारानी वीरांगना लक्ष्मीबाई

(१) मोरोपन्त को कन्या जन्म से बहुत आनन्द क्यों हुआ ?

(क) पुत्री के सुन्दर होने के कारण ।
(ख) पुत्री के गुणवान होने के कारण ।
(ग) महाराष्ट्र में लड़की का जन्म शुभ मानने के कारण ।
(घ) संतान का मुख देखने की लालसा के कारण ।
(च) पुत्री का अच्छे मुहूर्त में जन्म होने के कारण ।

(२) "दुधमुंही बच्ची" का अर्थ है—

(क) दूध के समान सुन्दर बच्ची ।
(ख) दूध के समान मुंहवाली बच्ची ।
(ग) बहुत छोटी बच्ची ।
(घ) दूध पीती बच्ची ।
(च) दूध के समान दाँत वाली बच्ची ।

(३) लक्ष्मीबाई को 'छबीली' नाम से क्यों पुकारा जाने लगा ?

(क) अत्यधिक लाड़-प्यार के कारण ।
(ख) अत्यधिक रूप-सौन्दर्य के कारण ।
(ग) एकमात्र सतान होने के कारण ।
(घ) अत्यधिक सजधज से रहने के कारण ।
(च) पिता की लाड़ली होने के कारण ।

(४) "पुरोहित जी ! ऐसी गाँठ बाँधना जो कभी न खुले" विवाह के समय के इस वाक्य से लक्ष्मीबाई का कौनसा गुण प्रकट होता है ?

(क) उद्दण्डता ।
(ख) उत्साह ।
(ग) स्पष्टता ।

(घ) निर्भीकता ।
(च) निर्लज्जता ।

(५) "बिजली गिर पड़ी" का अर्थ है ?
(क) प्रकाश होना ।
(ख) प्रसन्न होना ।
(ग) मृत्यु होना ।
(घ) विपत्ति आना ।
(च) अपमानित होना ।

(६) "जहर का घूँट पीकर रह जाने" का अर्थ है ?
(क) जहर पी लेना ।
(ख) ज़हरीला हो जाना ।
(ग) अपमान सह लेना ।
(घ) विपत्ति में फँस जाना ।
(च) मृत्यु का आ जाना ।

(७) झांसी की जनता में असंतोष क्यों बढ़ रहा था ?
(क) अँग्रेजों के नीचतापूर्ण कृत्यों से ।
(ख) १८५४ के कौंसिल के फैसले से ।
(ग) शासन की अव्यवस्था से ।
(घ) आर्थिक कठिनाइयों से ।
(च) गंगाधर राव की असमय मृत्यु से ।

(८) झाँसी का किला हाथ आने पर अंग्रेजों ने किस प्रकार बदला लिया ?
(क) जनता पर भयंकर कर लगाकर ।
(ख) दुर्ग को नष्ट-भ्रष्ट कर ।
(ग) मोरो पंत को फांसी देकर ।
(घ) सैनिकों की हत्या कर ।
(च) नागरिकों की लूट-मार कर ।

(९) ग्वालियर का किला अंग्रेजों के हाथ किस कारण से लगा ?
   (क) आपसी फूट ।
   (ख) पेशवाओं का विलास ।
   (ग) सैनिकों का विश्वासघात ।
   (घ) तांत्या टोपे का समय के बाद पहुँचना ।
   (च) अंग्रेजों का युद्ध-कौशल ।

(१०) झांसी के लोग फाग क्यों नहीं खेलते हैं ?
   (क) महारानी के शोक के कारण ।
   (ख) स्वदेशाभिभान के कारण ।
   (ग) प्रयत्नों में असफलता के कारण ।
   (घ) पराजय की ग्लानि के कारण ।
   (च) अशुभ घटना के कारण ।

(११) महारानी झाँसी के प्रति किसान मजदूरों ने कैसे कृतज्ञता प्रदर्शित की है ?

(१२) महारानी लक्ष्मीबाई रावजी को तलवार क्यों लौटाना चाहती थी ?

(१३) "कालपी" अँग्रेजों की पहुँच के बाहर क्यों समझी जाती थी ?

(१४) महारानी ने दीवान जवाहरसिंह को कंगना क्यों बाँधा ?

(१५) लेखक ने डलहौजी की दृष्टि को 'गिद्ध दृष्टि' क्यों कहा है ?

(१६) किस घटना ने महारानी को अँग्रेजों के खिलाफ यद्ध करने को बाध्य किया ?

(१७) जियाजीराव सिंधिया ग्वालियर का किला छोड़ कर क्यों भाग गया था ?

(१८) रानी की प्रशंसा में सर ह्यूज ने कौनसा वाक्य लिखा ?

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(१) रवीन्द्रनाथ का कुल ठाकुर क्यों कहलाता था ?

(क) राजपूत होने के कारण ।
(ख) शासक होने के कारण ।
(ग) शक्तिशाली होने के कारण ।
(घ) समाज में माननीय होने के कारण ।
(च) भूमि-पति होने के कारण ।

(२) "मैंने एक बच्चे को अपने साथी के गले में बाँहें डालते हुए देखा और यह दृश्य मेरे हृदय में इतना चुभा कि आँखों में आँसू निकल पड़े ।"

रवीन्द्रनाथ ने इन पंक्तियों में अपने किस भाव की अभिव्यक्ति की है ?

(क) कटुता ।
(ख) ग्लानि ।
(ग) पीड़ा ।
(घ) दया ।
(च) भ्रातृ-भाव ।

(३) "मनुष्यों से दूर पहाड़ों में खोजने के बजाय गरीबों के बीच हमें उसका पता लगाना चाहिए ।"

रवीन्द्र के इस कथन से उनकी कौनसी चारित्रिक विशेषता प्रकट होती है ?

(क) प्रकृति-प्रेम ।
(ख) ईश्वर-प्रेम ।
(ग) मानव-प्रेम ।
(घ) देश-प्रेम ।

(च) पर्वत-प्रेम ।

(४) कवि को मर्मान्तक पीड़ा किसकी मृत्यु से हुई ?

(क) पत्नी ।
(ख) कन्या ।
(ग) पिता ।
(घ) पुत्र ।
(च) पितामह ।

(५) रवीन्द्रनाथ विश्वविख्यात क्यों हुए ?

(क) यशस्वी पिता के पुत्र होने के कारण ।
(ख) शान्ति-निकेतन के संस्थापक होने के कारण ।
(ग) रूढ़ि-ध्वंसक तथा मानव-प्रेमी होने के कारण ।
(घ) गीतांजलि जैसे काव्य-ग्रंथ की रचना के कारण ।
(च) परम देशभक्त तथा विद्रोही होने के कारण ।

(६) रवीन्द्र नें विश्व भारती की स्थापना किसलिए की ?

(क) देश-प्रेम की भावना के प्रचार के लिए ।
(ख) अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास के लिए ।
(ग) भारतीय संस्कृति के पोषण के लिए ।
(घ) पिछड़े हुए गाँवों की दशा सुधारने के लिए ।
(च) शिक्षा की समस्या को हल करने के लिए ।

(७) कवि का देश-प्रेम किस घटना से प्रकट होता है ?

(क) गीतांजलि के प्रकाशन से ।
(ख) नोवल पुरस्कार प्राप्ति से ।
(ग) विश्व भारती की स्थापना से ।
(घ) गांधी विरोधी आंदोलन के विरोध से ।
(च) सर की उपाधि के परित्याग से ।

(८) गुरुदेव को प्रकाश किस प्रकार मिला ?

(९) १५ वर्ष की छोटी अवस्था में ही कवि की धाक बंगाली साहित्य पर क्यों बैठ गई थी ?

(१०) विश्व साहित्य में सौंदर्य-पूजा की दृष्टि से बेजोड़ रचनायें कौनसी हैं ?

(११) रवीन्द्रनाथ के समय में दो प्रकार की विचारधारा वाले लोग कौन-कौन से थे ?

(१२) "कवि रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा बहुमुखी थी।" उनकी प्रतिभा के विभिन्न क्षेत्रों के नाम लिखो।

(१३) काका कालेलकर ने रवीन्द्रनाथ की देशभक्ति के सम्बन्ध में क्या लिखा है ?

(१४) उनकी मृत्यु पर श्री किशोरलाल मशरूवाला ने किन शब्दों में उनकी प्रशंसा की ?

मैथिलीशरण गुप्त

(१) श्री मैथिलीशरण जी को 'राष्ट्र-कवि' क्यों कहा जाने लगा ?
(क) रचनाओं के श्रेष्ठत्व के कारण ।
(ख) रचनाओं की पठनीयता के कारण ।
(ग) रचनाओं की सरलता के कारण ।
(घ) रचनाओं की गांधी विचार-धारा के कारण ।
(च) रचनाओं में ग्राम्य-चित्रण के कारण ।

(२) भारतीय सद्गृहस्थ के समान उनका आग्रह जीवन में किस बात से था ?
(क) प्रेम ।
(ख) भक्ति ।
(ग) कर्म ।
(घ) त्याग ।
(च) संतुलन ।

(३) गुप्तजी ने कौन से ग्रंथ में स्वदेश-प्रेम के जागरण का शंखनाद किया ?
(क) जयभारत ।
(ख) कृषक कथा ।
(ग) भारत भारती ।
(घ) झंकार ।
(च) साकेत ।

(४) मैथिलीशरण गुप्त ने महावीरप्रसाद द्विवेदी को 'काव्य-गुरु' मान लिया क्योंकि वे—
(क) भारतीय ख्याति की पत्रिका 'सरस्वती' के संपादक थे ।
(ख) नये-नये लेखकों को प्रोत्साहन देने में विश्वास करते थे ।

(ग) नये कवियों की रचनायें उदारतापूर्वक छाप देते थे ।
(घ) नयी रचनाओं को बार-बार लौटा देते थे ।
(च) रचनाओं को नयी अभिव्यक्ति देकर छाप देते थे ।

(५) "हिन्दुस्तान का मस्तक नीचा हो गया" कवि के इस कथन से उनकी कौन सी भावना प्रकट होती है ?
(क) देशभक्ति ।
(ख) क्षोभ ।
(ग) दुःख ।
(घ) असमर्थता ।
(च) क्रोध ।

(६) गुप्तजी इस पृथ्वी पर कौन सा संदेश लेकर आए थे ?
(क) तन-सेवा का ।
(ख) मन-सेवा का ।
(ग) जीवन-सेवा का ।
(घ) भुवन-सेवा का ।
(च) धन-सेवा का ।

(७) गुप्त जी ने नारी को सम्मान दिलाने के लिए क्या किया ?
(क) संघर्ष करने का परामर्श दिया ।
(ख) उनके त्याग और बलिदान का वर्णन किया ।
(ग) राज्य-सभा में प्रस्ताव उपस्थित किया ।
(घ) उनकी महिमा का पुस्तकों में वर्णन किया ।
(च) स्वतंत्रता-संग्राम में कूद जाने की प्रेरणा दी ।

(८) गुप्तजी ने अपने काव्य का चरित-नायक किन्हें बनाया ?
(क) भारत के राजनैतिक नेताओं को ।
(ख) समकालीन महापुरुषों को ।
(ग) अतीत के महापुरुषों को ।
(घ) ईश्वर के अवतारों को ।
(च) भारतीय राज-महिषियों को ।

(९) गुप्ताजी का स्नेहमय रूप रौद्र की मूर्ति कब बन जाता था ?
   (क) नारी का अपमान देखकर।
   (ख) हिन्दी का विरोध सुनकर।
   (ग) अपनी आलोचना सुनकर।
   (घ) काव्य-कृतियों का अपमान देखकर।
   (च) राष्ट्रीय नेताओं का विरोध सुनकर।

(१०) लेखक ने गुप्तजी को हिन्दी का सशक्त प्रहरी क्यों कहा है ?

(११) गुप्तजी ने अपने काव्य में युग-समस्याओं का समावेश कैसे किया ?

(१२) गुप्तजी को लोकप्रियता दिलाने वाले तीन प्रमुख ग्रंथों के नाम लिखिए।

(१३) गुप्तजी द्वारा वर्णित दो उपेक्षिताओं के नाम लिखिए।

जगदीशचन्द्र बसु

(१) जगदीशचन्द्र बसु को सच्ची मनुष्यता का पाठ किसने सिखाया ?

(क) पुस्तकों ने ।
(ख) प्रकृति ने ।
(ग) अध्यापक ने ।
(घ) बालकों ने ।
(च) पिता ने ।

(२) जगदीशचन्द्र बसु ने लगातार तीन वर्ष तक प्रेसिडेंसी कालेज में वेतन क्यों नहीं लिया ?

(क) रुपये की आवश्यकता न होने के कारण ।
(ख) सरकार से लड़ाई होने के कारण ।
(ग) स्वाभिमान की भावना के कारण ।
(घ) त्याग की भावना के कारण ।
(च) लोभ की भावना के कारण ।

(३) "आँखें मूंद ली" का अर्थ है—

(क) नींद ले ली ।
(ख) देखी अनदेखी कर दी ।
(ग) ध्यान नहीं दिया ।
(घ) अपमान किया ।
(च) कष्ट अनुभव किया ।

(४) जगदीशचन्द्र बसु 'बेतार के तार के आविष्कार' को संसार के सामने क्यों न ला सके ?

(क) आर्थिक संकट के कारण ।
(ख) सरकार की उदासीनता के कारण
(ग) अपनी अकर्मण्यता के कारण ।

(घ) अन्य कार्यों में व्यस्तता के कारण।
(च) अँग्रेजों की उपेक्षा के कारण।

(५) जगदीशचन्द्र ने "बसु विज्ञान मन्दिर" की स्थापना किस उद्देश्य से की ?
(क) वैज्ञानिक शोध के लिए।
(ख) गरीब विद्यार्थियों की सहायता के लिए।
(ग) देश-सेवा के लिए।
(घ) नाम कमाने के लिए।
(च) विज्ञान-शिक्षा के लिए।

(६) बसु को लेखक ने सच्चा मानव क्यों माना है ?
(क) उच्चकोटि के वैज्ञानिक होने के कारण।
(ख) भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत होने के कारण।
(ग) जीव-जन्तुओं से प्रेम होने के कारण।
(घ) दुखियों के प्रति करुणार्द्र होने के कारण।
(च) वनस्पति को भी प्राणी जगत् के समान मानने के कारण।

(७) लेखक ने एडीसन और जगदीशचन्द्र की तुलना क्यों की है ?
(८) जगदीशचन्द्र बसु की कीर्ति संसार में किस आविष्कार से फैली ?
(९) विदेशी विश्वविद्यालयों ने जगदीशचन्द्र को किस प्रकार सम्मानित किया ?
(१०) अँग्रेज वैज्ञानिकों ने प्रारम्भ में श्री बसु के साथ कैसा व्यवहार किया ?

विज्ञानाचार्य चन्द्रशेखर वेंकट रमन

(१) श्री वेंकट रमन ने अपनी कार्यस्थली किसे बनाया ?

(क) खेल-कूद के मैदान को।
(ख) धर्मग्रन्थों के भंडार को।
(ग) वैज्ञानिक प्रयोगशाला को।
(घ) अपने कार्यालय को।
(च) संगीत और गायन कक्ष को।

(२) सर रमन विलायत क्यों नहीं जा सके ?

(क) गरीबी के कारण।
(ख) घरेलू कठिनाइयों के कारण।
(ग) डाक्टरी सर्टीफिकेट न मिलने के कारण।
(घ) माता-पिता के लाड़-प्यार के कारण।
(च) देश में ही कार्य करने की इच्छा के कारण।

(३) सर रमन के लिए उच्च पद भी आकर्षणहीन क्यों हो गया ?

(क) विज्ञान की सेवा का अवसर न मिलने के कारण।
(ख) कार्यव्यस्तता और लालफीताशाही के कारण।
(ग) अपने सरल स्वभाव के कारण।
(घ) विदेश यात्रा का अवसर न मिलने के कारण।
(च) अपने स्वाभिमान को चोट लगने के कारण।

(४) यूरोप के विद्यालय भी कलकत्ता विश्वविद्यालय को स्पर्धा की दृष्टि से क्यों देखने लगे थे ?

(क) पढ़ाई की श्रेष्ठता के कारण।
(ख) अनुसंधान की श्रेष्ठता के कारण।
(ग) अध्यापकों की श्रेष्ठता के कारण।
(घ) सुविधाओं की श्रेष्ठता के कारण।

(च) उपकरणों की श्रेष्ठता के कारण ।

(५) 'धाक जमाना' मुहावरे का क्या अर्थ है ?
(क) डर दिखाना ।
(ख) प्रभावित करना ।
(ग) शक्ति दिखाना ।
(घ) नाम कमाना ।
(च) शान दिखाना ।

(६) रमन का सबसे बड़ा सम्मान किस घटना से हुआ ?
(क) साइंस कांग्रेस के सभापतित्व से ।
(ख) ब्रिटिश साम्राज्य के वैज्ञानिकों की सभा में आमंत्रण से ।
(ग) 'सर' की उच्च पदवी की प्राप्ति से ।
(घ) विदेशी विश्वविद्यालय द्वारा Ph. D. प्राप्ति से ।
(च) नोबल पुरस्कार विजेता घोषित होने से ।

(७) दुनिया की सबसे बड़ी दूरबीन को देखकर सर रमन ने क्या कहा ?

(८) कौन सी घटना से रमन की देश के प्रति स्वाभिमान की भावना प्रकट होती है ?

(९) सर रमन के विज्ञान प्रेम को बताने वाली घटना लिखिए ।

(१०) सर रमन को लेखक ने वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल क्यों कहा है ?

(११) "सच्चा गुरु पारस से भी बढ़ा-चढ़ा होता है" रमन महोदय के लिए इस उक्ति की युक्तियुक्तता सिद्ध कीजिए ।
(केवल पांच पंक्तियां लिखिए)

(१२) रमन की न्याय-प्रियता को बताने वाली घटना का उल्लेख कीजिए ।

सुभाषचन्द्र बोस

(१) सन् १९१३ में सुभाष ने शीघ्र ही प्रेसीडेन्सी कालिज क्यों छोड़ दिया था ?

(क) अध्ययन में रुचि नहीं थी ।
(ख) अंग्रेजी शिक्षा से घृणा थी ।
(ग) अध्यात्म के प्रति आकृष्ट थे ।
(घ) 'रामकृष्ण मिशन' देखना चाहते थे ।
(च) योग्य अध्यापकों का अभाव था ।

(२) "मुझे कृष्ण का वह रूप जो तीर्थों में पूज्य है, आकर्षित नहीं कर पाता । मैं तो कृष्ण के उस रूप का पुजारी हूँ जो उन्होंने कुरुक्षेत्र के धर्मयुद्ध में दिखाया था ।"

उपर्युक्त कथन से सुभाष के चरित्र की कौनसी विशेषता प्रकट होती है ?

(क) आस्तिकता ।
(ख) नास्तिकता ।
(ग) वीरता ।
(घ) साहस ।
(च) दृढ़ निश्चय ।

(३) सुभाष आई०सी०एस० की परीक्षा पास करना क्यों नहीं चाहते थे ?

(क) क्लिष्टता के कारण ।
(ख) निर्धनता के कारण ।
(ग) देश-प्रेम के कारण ।
(घ) मित्रों के आग्रह के कारण ।
(च) नौकरी की अनिच्छा के कारण ।

(४) सुभाष ने अपना राजनीतिक गरु किसे माना ?

(क) गांधीजी ।
(ख) गोखले ।
(ग) नेहरू ।
(घ) चितरंजनदास ।
(च) रासबिहारी ।

(५) गांधीजी से मिलकर सुभाष निराश होकर क्यों चले आये ?

(क) सिद्धान्त अस्पष्ट थे ।
(ख) सिद्धान्त अव्यावहारिक थे ।
(ग) सिद्धान्त निष्प्राण थे । ।
(घ) सिद्धान्त अयथार्थवादी थे ।
(च) सिद्धान्त अध्यात्मवादी थे ।

(६) कलकत्ता कारपोरेशन के चीफ एक्जीक्यूटिव अफसर के पद पर रह कर सुभाष बाबू ने ३०००) की जगह १५००) मासिव वेतन लिया ।

इससे उनके चरित्र की कौन-सी विशेषता प्रकट होती है ?

(क) निःस्वार्थता ।
(ख) देश-प्रेम ।
(ग) त्याग ।
(घ) ईमानदारी ।
(च) परोपकारिता ।

(७) सुभाष की कीर्ति किस कारण से सारे देश भर में व्याप्त हो गई ?

(क) क्रान्तिकारी विचारों के कारण ।
(ख) सरकार के अत्याचारों के कारण ।
(ग) देश-प्रेम की भावना के कारण ।
(घ) फारवर्ड पत्र के सम्पादन के कारण ।
(च) निर्भीकता के कारण ।

(८) सुभाष कांँग्रेस से अलग क्यों हुए ?
  (क) हार जाने के कारण ।
  (ख) अपनी बात न मानी जाने के कारण ।
  (ग) कांँग्रेस में अविश्वास होने के कारण ।
  (घ) उग्रवादी होने के कारण ।
  (च) गांधीजी को कांँग्रेस में रहने देने के लिए ।

(९) "आँखों में धूल झोंकना" मुहावरे का क्या अर्थ है ?
  (क) आँख में धूल फेंकना ।
  (ख) दिखाई न देना ।
  (ग) धोका देना ।
  (घ) चकमा देना ।
  (च) देखने न देना ।

(१०) बाढ़ की अवस्था में सुभाष ने काबुल नदी को किसकी सहायता से पार किया ?
  (क) नाव ।
  (ख) मशक ।
  (ग) लट्ठे ।
  (घ) पीपा ।
  (च) जहाज़ ।

(११) आजाद हिंद सरकार को कौन-कौन से देशों की सरकारों ने मान्यता दे दी थी ?

(१२) आजाद हिंद फौज में भर्ती होने के लिए कौन सा प्रतिज्ञा पत्र भरना पड़ता था ?

(१३) सुभाष बाबू ने आजाद हिंद फौज की पहली परेड के समय जो भाषण दिया उसका सारांश लिखिए ।

(१४) "मजहब हैवान को इन्सान बनाने के लिए है ।"
पठान की इस बात का सुभाष पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(१५) गांधीजी के प्रस्ताव का विरोध करते हुए सुभाष बाबू ने जो भाषण दिया उससे उनके चरित्र की कौन-कौन सी विशेषताएँ प्रकट होती हैं ।

अजेय लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल

(१) सरदार वल्लभ भाई पटेल को भारत का बिस्मार्क क्यों कहते हैं ?

(क) देशी राज्यों को केन्द्राधीन करने के कारण ।
(ख) दृढ़ और नीति-कुशल होने के कारण ।
(ग) प्रतिज्ञा, के धनी होने के कारण ।
(घ) देश की अखंडता में विश्वास करने के कारण ।
(च) स्वयं बिस्मार्क की तरह पराक्रमी होने के कारण ।

(२) सरदार एक दो बार स्कूल से इसलिये निकाल दिये गये थे क्योंकि वे :—

(क) अध्यापकों के प्रति अविनीत थे ।
(ख) अन्याय के विरुद्ध बोलते थे ।
(ग) अध्ययन में मन नहीं लगाते थे ।
(घ) छात्रों के प्रति असहिष्णु थे ।
(च) कुशाग्र-बुद्धि नहीं थे ।

(३) पटेल की सहिष्णुता का उदाहरण कौनसा है ?

(क) दूसरा विवाह न करना ।
(ख) पत्नी की मृत्यु पर धैर्य धारण ।
(ग) भाई को पहले विलायत जाने देना ।
(घ) भाई के राजनीति में भाग लेने पर घर खर्च चलाना ।
(च) बैरिस्टरी को लात मार कर राजनीति में कूदना ।

(४) सरदार पटेल किस घटना से अखिल भारतीय नेता बन गए ?

(क) गोधरा बेगार प्रथा हटाने के लिए आन्दोलन ।
(ख) गुजरात विद्यापीठ की स्थापना ।
(ग) बारडोली सत्याग्रह ।
(घ) बोरसद सत्याग्रह ।

(च) नागपुर का झण्डा सत्याग्रह।

(५) "बारडोली में केवल एक ही सरदार है, उसकी आज्ञा का पालन सब लोग करते हैं ?"

सरदार पटेल के इस कथन में उनका कौन सा भाव प्रकट होता है ?

(क) अहंकार।
(ख) गर्व।
(ग) आत्मविश्वास।
(घ) दृढ़ता।
(च) व्यंग्य।

(६) सरदार पटेल को बर्फ से ढका हुआ ज्वालामुखी किसने कहा था ?

(क) गांधीजी।
(ख) जवाहरलालजी।
(ग) तिलक।
(घ) शौकतअली।
(च) मोतीलालजी।

(७) सरदार पटेल के कौन से कार्य से भारत उनका सदा ऋणी रहेगा ?

(८) बारडोली के सत्याग्रह में आने वाली विपत्तियों के लिए पटेल नें किसानों से क्या कहा ?

(९) एक उदाहरण दीजिये जिससे पता चले कि सरदार में संगठन की क्षमता बचपन से ही थी।

(१०) सरदार पटेल के जीवन से एक उदाहरण देकर बताइये कि तीव्र इच्छा उत्पन्न होने पर असंभव जान पडने वाला काम भी संभव हो जाता है।

(११) अपने हृदय की तीव्र इच्छा को दबा कर वल्लभभाई ने अपने बड़े भाई को विलायत जाने दिया। इस घटना से उनके चरित्र की कौन सी विशेषता प्रकट होती है।

शान्ति के अग्रदूत जवाहरलाल नेहरू

(१) पं० मोतीलालजी ने जवाहरलालजी को शारीरिक दंड क्यों दिया ?

(क) झूठ बोलने के कारण ।
(ख) पेन उठा लेने के कारण ।
(ग) आंदोलन में भाग लेने के कारण ।
(घ) अनुशासनहीनता के कारण ।
(च) शासकों से घृणा करने के कारण ।

(२) जवाहरलालजी पर अँग्रेजों के बहुत समीप रहने का क्या प्रभाव पड़ा ?

(क) शासक जाति के लिए आदर भाव उत्पन्न हो गया ।
(ख) अंग्रेजों के प्रति आतंक की भावना सर्वथा निकल गई ।
(ग) अँग्रेजों के जीवन की स्वच्छंदता आ गई ।
(घ) राजनीति में भाग लेने की भावना जाग्रत हो गई ।
(च) शासकों के प्रति घृणा की भावना पैदा हो गई ।

(३) जवाहरलालजी राजनीति में किस घटना के कारण प्रविष्ट हुए ?

(क) सेवाय होटल के समय के दुर्व्यव्यहार से ।
(ख) रॉलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह से ।
(ग) अवध के किसानों के आंदोलन से ।
(घ) युवराज के स्वागत के बहिष्कार से ।
(च) जलियाँवाला बाग के हत्याकांड से ।

(४) माता स्वरूपरानी की आंखों से अश्रुधारा वह चली थी —

(क) लाहौर में पुत्र का स्वागत देखकर ।
(ख) पति और पुत्र को जेल जाते देखकर ।
(ग) पुत्र के कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने पर ।

(घ) पुत्र को योरोप यात्रा पर जाते देखकर ।
(च) पुत्र को मोतीलालजी द्वारा दण्ड दिये जाने पर ।

(५) तीसरी बार कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने का सौभाग्य किस नेता को मिला ?
(क) जवाहरलाल नेहरू ।
(ख) मोतीलाल नेहरू ।
(ग) महात्मा गांधी ।
(घ) सरदार पटेल ।
(च) लालबहादुर शास्त्री ।

(६) सन् १९४१ में अंग्रेज सरकार भारतीयों को संतुष्ट करना क्यों चाहती थी ?
(क) उनकी मांग को उचित समझ कर ।
(ख) युद्ध में अपना सहायक बनाने के लिए ।
(ग) महात्माजी के सत्याग्रह से घबराकर ।
(घ) नेहरूजी के तूफानी दौरों से घबरा कर ।
(च) जर्मनी के लड़ाई में कद पड़ने के कारण ।

(७) अंग्रेज लोग 'जादू की छड़ी' किसे समझते थे ?
(क) क्रिप्स स्कीम को ।
(ख) दमन नीति को ।
(ग) फूट डालने की नीति को ।
(घ) नेहरूजी के भाषणों को ।
(च) महात्माजी के सत्याग्रह को ।

(८) अन्तरिम अस्थाई सरकार में नेहरूजी को कौनसा पद मिला था ?
(क) प्रधान मंत्री ।
(ख) प्रेसिडेंट ।
(ग) विदेश मंत्री ।
(घ) उप-प्रधान मंत्री ।

(च) वाइस प्रेसिडेंट ।

(९) "नियंत्रण" शब्द का क्या अर्थ है ?

(क) बुलावा ।

(ख) रोक ।

(ग) बिना यंत्र का ।

(घ) मना करना ।

(च) विरोध करना ।

(१०) पण्डित नेहरू को योरोप भ्रमण से कौन-कौन से दो लाभ हुए ?

(११) पं० मोतीलालजी के स्वभाव की क्या विशेषता थी ?

(१२) पं० मोतीलालजी को कौनसी बात बेढंगी लगती थी ?

(१३) पं० नेहरू के दौरों को तूफानी दौरे क्यों कहते थे ?

(१४) नेहरूजी की चार मुख्य पुस्तकों के नाम लिखो ।

(१५) जवाहरलालजी का विदेशों में शानदार शाही स्वागत और सत्कार क्यों होता था ?

(१६) नेहरू जी के हृदय पर आघात किस घटना से लगा ?

(१७) जवाहरलालजी को लेखक ने शान्ति के अग्रदूत क्यों कहा है ?

लालबहादुर शास्त्री

(१) लेखिका के मत से लालबहादुर शास्त्री का मुख्य स्थान कैसे नेताओं में है ?

(क) जनता को दुष्प्रभावों से बचाने वाले ।
(ख) जनता को सही रास्ते पर चलाने वाले ।
(ग) देश को स्वतन्त्र कराने वाले ।
(घ) देश का भला विचारने वाले ।
(च) देश के लिए मर मिटने वाले ।

(२) "अभ्यर्थना" का क्या अर्थ है ?

(क) स्वागत ।
(ख) निरादर ।
(ग) प्रार्थना ।
(घ) सेवा ।
(च) अभ्यास ।

(३) "जो सरकार जनता को पानी तक नहीं दे सकती उसे रहने का कोई अधिकार नहीं ।"
शास्त्रीजी के इस कथन से उनकी कौनसी भावना प्रकट होती है ?

(क) सरकार के प्रति रोष ।
(ख) सरकार के प्रति व्यंग्य ।
(ग) जनता के प्रति प्रेम ।
(घ) अपनी असमर्थता ।
(च) कर्त्तव्यपालन में सजगता ।

(४) शास्त्रीजी की कौनसी विशेषता ने उन्हें जनसाधारण का व्यक्ति बना दिया था ?

(क) सरलता ।

(ख) स्वाभाविकता ।
(ग) ईमानदारी ।
(घ) सच्चाई ।
(च) कर्त्तव्यनिष्ठा ।

(५) शास्त्रीजी का सबसे बड़ा गुण था ?
(क) ईमानदारी और सौजन्य ।
(ख) दयालुता और सच्चाई ।
(ग) कर्त्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी ।
(घ) स्वाभाविकता और सच्चाई ।
(च) सौजन्य और दयालुता ।

(६) शास्त्रीजी जनता के प्रिय नेता किस कारण बने ?
(क) रेल मंत्री के रूप में सफलता के कारण ।
(ख) रेल मंत्री पद से त्यागपत्र देने के कारण ।
(ग) पाकिस्तान को हराने के कारण ।
(घ) प्रधान मंत्री बनने के कारण ।
(च) ताशकंद समझौते के कारण ।

(७) शास्त्रीजी को दायित्व प्रदान करने पर सबको प्रसन्नता क्यों होती थी ?
(क) उनकी ईमानदारी के कारण ।
(ख) कार्यकुशलता के कारण ।
(ग) सत्यनिष्ठा के कारण ।
(घ) सादगी के कारण ।
(च) जनप्रियता के कारण ।

(८) जनता एक्सप्रेस चलाने से हमें शास्त्रीजी के किस गण का पता चलता है ?

(९) कोई एक घटना लिखिए जिससे पता लगे कि शास्त्रीजी परायों के लिए भी अपने थे ।

(१०) शास्त्रीजी विद्याध्ययन के साथ अपने परिवार के लोगों का पालन कैसे करते थे ?